ISSN : 2278-4632

JUNI KHYAT
जूनी ख्यात

इतिहास, कला एवं संस्कृति की शोध पत्रिका

A Peer-Reviewed and Listed in UGC Care List

मरु भूमि शोध संस्थान, श्री डूँगरगढ़ (राज.)
MARUBHUMI SHODH SANSTHAN, SRI DUNGARGARGH (RAJ.)

संपादक
डॉ. बी. एल. भादानी

सह संपादक
डॉ. राजेन्द्र कुमार

JUNI KHYAT

जूनी ख्यात

(इतिहास, कला एवं संस्कृति की शोध पत्रिका)

वर्ष : 8 ● अंक 2

जनवरी-जून 2019

A Peer-Reviewed and Listed in UGC Care List

ISSN 2278-4632

संपादक

डॉ. बी. एल. भादानी

प्रोफेसर

सह संपादक

डॉ. राजेन्द्र कुमार

प्रबंध संपादक

श्याम महर्षि

मरुभूमि शोध संस्थान

संस्कृति भवन

एन.एच. 11, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राजस्थान

विज्ञापन एवं प्रचार-प्रसार :
महावीर प्रसाद माली, श्रीडूँगरगढ़, बीकानेर
सम्पर्क सूत्र :
प्रबंध सम्पादक-श्याम महर्षि
प्रकाशकीय एवं विज्ञापन कार्यालय :
सचिव, मरुभूमि शोध संस्थान, श्रीडूँगरगढ़-331803 (बीकानेर) राज.
आजीवन सदस्यता 2000 रु.
सहयोग दर :
(व्यक्तिगत) चार अंक 300 रुपये ❑ एक अंक 75 रुपये
(संस्था) चार अंक 400 रुपये ❑ एक अंक 100 रुपये
बाहरी चैक के लिए 25 रुपये अतिरिक्त
विदेश :
(व्यक्तिगत) चार अंक-इंग्लैण्ड 40 पाउण्ड ❑ अमेरिका 50 डालर
(संस्था) चार अंक-इंग्लैण्ड 80 पाउण्ड ❑ अमेरिका 100 डालर
हवाई डाक :
इंग्लैण्ड 10 पाउण्ड (10) एवं अमेरिका 20 डालर अतिरिक्त
आजीवन शुल्क संस्था के निम्न खाते में सीधा ट्रांसफर करके हमें बताने की कृपा करें।
1. Punjab National Bank 2. Sri Dungargarh
3. मरुभूमि शोध संस्थान 4. खाता सं. 3604000100174114
5. IFSC Code - PUNB0360400
धनादेश/ड्राफ्ट/नकद भुगतान भेजने का पता :
श्याम महर्षि
सचिव :
मरुभूमि शोध संस्थान
(राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति)
श्रीडूँगरगढ़ 331803 (बीकानेर) राज.
फोन-01565-222670
आलेख मय सीडी में या ईमेल किया जा सकता है।
सम्पादकीय कार्यालय :
डॉ. बी.एल. भादानी
रांगड़ी चौक, बीकानेर 334001 (राज.)
मो. 9950678920
ई मेल-bbhadani.amu@gmail.com • kumaarrajender11@gmail.com

महत्त्वपूर्ण जानकारी

पाठकों से निवेदन है कि **जूनी ख्यात** में प्रकाशन हेतु शोध पत्र की एक प्रति Word तथा एक प्रति PDF फाइल में अवश्य भेजें। यदि शोध पत्र हिन्दी में है तो Kruti Dev 010 तथा अंग्रेजी में है तो Times New Roman नामक फोन्ट का प्रयोग करें।

शोध पत्र से सम्बन्धित छाया चित्रों को कम से कम 300 डीपीआई में सुरक्षित कर जे पी जी फाइल बनाकर अलग से अनुशीर्षक सहित भेजें।

शोध पत्र को इस पते पर e-mail करें bbhadani.amu@gmail.com अथवा डाक से सीडी बनाकर सम्पादक, **जूनी ख्यात**, रांगड़ी चौक, बीकानेर (राज.) 334001 के पते पर भिजवाएँ।

सम्पादक

Sl.No.	Journal No.	Title	Publisher	ISSN
169		**JUNI KHYAT**		2278-4632

UGC Journal Details

Name of the Journal **: JUNI KHYAT**

ISSN Number : 2278-4632

e-ISSN Number : NA

Source : **UGC**

Discipline : **Social Science**

Subject : **Social Sciences (all)**

Focus Subject : Cultural Studies

Publisher : Marubhumi Shodh Sansthan, Sri Dungargarh (Bikaner)

श्री डूंगरगढ़ — से प्राप्त देवली पर 10 पंक्तियों का लेख है —

॥ अभिप्सार्थ सिध्यर्थं पूजितो यः सुरैरपि।
॥ सर्व विघ्नछिदे तस्मै गणाधिपतये नमः॥ अ
॥ थ संवसरे स्मिन् संवत् १६७२ वर्षे चैत्र मा
॥ से शुक्ल पक्षे एकादश्यां तिथौ यथावारन
॥ क्षत्र योगान्वितायां (मृते) सत शांडिल्य गोत्र
॥ पुरोहित बुधात पुत्र पुरोहित परमानंदस्य
॥ गोविंदचरणार्थ परायणः बाई तारां
॥ स्व पितृवंश स्वसुरवंशी पूल करिणी
॥ तया सहितः स्वर्गे प्रयाः॥ शुभं भवतु ॥
॥ कल्याणी भूयात् ॥

लेख अशुद्ध संस्कृत में है। भाव यह है कि सं० १६७२ चैत्र शुक्ल ११ को शांडिल्य गोत्री पुरोहित बुध के पुत्र पुरोहित परमानंद की मृत्यु पर उसकी पत्नी बाई तारा अपने पितृपक्ष और श्वसुर पक्ष के पुण्य के लिए सती होगई।

संपादकीय

हमें यह जानकारी देते हुए हर्ष हो रहा है कि **जूनी ख्यात यू.जी.सी. की केयर सूची** में सम्मिलित हो गई है। यह इसलिए सम्भव हो सका है कि हमारी पत्रिका गत पैंतीस वर्षों से स्तरीय शोध आलेखों को प्रकाशित करती रही है जिसमें इतिहासविदों एवं शोधार्थियों का पूरा सहयोग रहा है। यू.जी.सी. की मान्यता सूची में सम्मिलित होने के पश्चात हमारा दायित्व द्विगुणित हो जाता है। इसलिए विद्वानों से हम आग्रह करते हैं कि अपने आलेख की पादटिप्पणियां एवं सन्दर्भ निर्धारित प्रारूप में भेजने का कष्ट करें। जो हम इसी अंक में प्रकाशित कर रहे हैं।

विद्वतजनों एवं शोधार्थियों द्वारा भेजे जाने वाले आलेखों की संपादक मंडल के सदस्यों एवं विषय-विशेषज्ञों द्वारा समीक्षा की जावेगी जिसके पश्चात ही पत्रिका में प्रकाशित किया जा सकेगा। इस सम्बन्ध में सभी से आग्रह है कि अपने आलेख की सॉफ्ट एवं हार्ड कॉपी हमारे ई-मेल एवं पत्रिका में प्रकाशित सम्पादक के पते पर भेजने का कष्ट करें। अपना आलेख इस ई-मेल पर भेजें : bbhadani.amu@gmail.com • kumaarrajender11@gmail.com

पत्रिका में समीक्षा हेतु लेखक अपने ग्रन्थ की दो प्रतियां भेजने का कष्ट करें।

सम्पादक

डॉ. बी. एल. भादानी

अनुक्रम

- शान्तिकाल में अन्तर्राष्ट्रीय संबंध 7
  डॉ. रीतेश व्यास
- उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के मूल्यों की उपादेयता 17
  डॉ. अविनाश पारीक
- उत्तर-पश्चिम राजस्थान में पागी व्यवस्था 26
  डॉ. सुखाराम
- मारवाड़ रियासत की मिर्धा डाक 36
  डॉ. उषा लामरोर
- 21वीं शताब्दी के हिन्दी निबंधों में धर्म और नीति 47
  मनप्रीत सिंह संधू
- सोशल मीडिया के दौर में हिंदी एवं राष्ट्रवाद का समन्वय : एक अध्ययन 60
  विशाल शर्मा
- अजमेर में प्रदर्शित ब्रज मण्डल का अप्रकाशित शिल्प वैभव 68
  सुश्री अदिति गौड़
- An Introduction to Archival Sources of South Eastern Rajasthan (C. 1672-1820) 72
  Narayan Singh Rao
- Religio-Cultural Route from Agra to Ajmer in Mughal India 87
  Dr. Nusrat Yasmeen

शान्तिकाल में अन्तर्राष्ट्रीय संबंध

● डॉ. रीतेश व्यास

भारत का अपने पड़ोसी देशों/राष्ट्रों/राज्यों के बीच जो संबंध रहे वह दीर्घता लेने से पूर्व ही समाप्त हो जाते थे इसका प्रमुख कारण यह था कि सम्पूर्ण देश में कभी भी एक राजा का शासन नहीं रहा। बड़े-बड़े शासक अवश्य ही भारत की केन्द्रीय सत्ता पर आसीन हुए लेकिन उनका साम्राज्य स्थायी रूप धारण करने से पूर्व ही नष्ट हो जाता था। धर्मग्रंथों में इसका मुख्य कारण यातायात की अव्यवस्था को बताया है। उन असुविधाओं के कारण दूर प्रदेशों पर ये राजा अपना स्थायी नियन्त्रण नहीं रख सके। इसी कारण जब केन्द्रीय सत्ता में परिवर्तन होता था तो ये नियन्त्रित प्रदेश स्वयं को स्वतन्त्र कर लेते थे।

शक्तिशाली एवं महत्त्वाकांक्षी राजाओं ने अपना आदर्श प्रारंभ से ही चक्रवर्ती राजाओं को माना हैं। चक्रवर्ती उसे माना गया है जो सार्वभौम शासक होने के साथ-साथ समस्त देश पर शासन करता है। आचार्य कौटिल्य ने चक्रवर्ती उसे माना है जिसका राज्य उत्तर में हिमालय से दक्षिण में समुद्र पर्यन्त तक होता है।[1]

आचार्य सोमदेव ने तीन प्रकार के युद्ध विजयों का उल्लेख नीतिवाक्यामृत में किया है—

1. धर्म विजय 2. लोभ विजय 3. असुर विजय।[2]

1. धर्म विजय

आचार्य के अनुसार धर्म विजय वह विजय है जिसमें विजयी शासक पराजित शासक के अस्तित्व का नष्ट नहीं करता बल्कि स्वयं के आधिपत्य में उसकी स्वायतसत्ता स्थापित रहने देता है तथा उस पर कर लागू करके ही संतुष्ट रहता है।[3]

2. लोभ विजय

लोभ विजय वह जिसमें युद्ध का उद्देश्य धन और भूमि होती है। उसको

प्राप्त करने के बाद राजा उसको पराधीन नहीं बनाता बल्कि पराजित राजा को अपने आन्तरिक विषयों में पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करता है।[4]

3. असुर विजय

असुर विजय केवल धन व पृथ्वी तक ही सीमित नहीं रहती बल्कि विजित शासक का वध भी कर दिया जाता है तथा उसके परिवार का अपहरण भी कर लिया जाता है।[5] इस प्रकार प्रथम दो प्रकार की विजय में राज्य का अस्तित्व रहता है मगर असुर विजय में राज्य का अस्तित्व भी नष्ट कर दिया जाता है। इस प्रकार अंतिम प्रकार की विजय हीन दृष्टि से देखी जाने वाली है और प्रथम दो प्रकार की विजय को हम सर्वोतम कह सकते है।

विभिन्न राज्यों के पारस्परिक संबंध किस प्रकार के थे इस संबंध में सभी प्राचीन साहित्य प्रकाश डालते है। नीतिवाक्यामृत में भी हमें इस संबंध में विवरण उपलब्ध होता है। यहां अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों को दो भागों में विभाजित किया गया है—

1. शांतिकाल में अन्तर्राष्ट्रीय संबंध। 2. युद्धकाल में अन्तर्राष्ट्रीय संबंध।

1. शांतिकाल में अन्तर्राष्ट्रीय संबंध

राज्यों के बीच संबंध स्थापित करने में राजनय एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता था। इसका स्वरूप आज के स्वरूप से भिन्न था। प्राचीन काल में राज्य के लिए राजनैतिक प्रतिनिधियों की नियुक्ति नहीं होती थी न हीं स्थायी रूप से दूत नियुक्त करने की प्रथा थी। दूत के कार्य सिर्फ संदेशों का आदान प्रदान करना ही था और उनका प्रयोग सिर्फ किसी विशेष कार्य के सम्पादन के लिए ही होता था। नीतिवाक्यामृत तथा अन्यप्राचीन ग्रंथों में हमें 'दूत' के बारे में काफी उल्लेख मिलता है—

1. दूत

आचार्य सोमदेव ने दूत को परिभाषित करते हुए लिखा है कि—'जो अधिकारी दूरवर्ती राजकीय कार्यों जैसे—संधि-विग्रह आदि का साधक होता है उसे दूत कहते है।[6] इस प्रकार हम कह सकते है कि प्राचीन काल मे दूत सिर्फ राजकीय कार्य होने पर ही काम में लिया जाता था।

दूत के गुण

(योग्यता)—दूत में क्या-क्या गुण होने चाहिए इस विषय पर जैनाचार्य

लिखते है कि दूत—स्वामी भक्त, ध्रूत क्रीड़ा, मद्यपान आदि व्यसनों से मुक्त, चतुर, पवित्र, निर्लोभी, विद्वान, उदार, बुद्धिमान, सहिष्णु, शत्रु का ज्ञाता तथा कुलीन होना चाहिए।[7] अर्थात दूत में वे सब गुण होने चाहिए जो राज्य की प्रतिष्ठा को दूसरे राज्य में नष्ट होने से बचा सकें।

मनु ने दूत की नियुक्ति (गुण) के संबंध में लिखा है— जो सब शास्त्रों में निपुण हो, आंखों के संकेत स्वरूप तथा चेष्टा से दूसरों के हृदय की बात जान सकता हो, भविष्य में होने वाली बात का भी अनुमान लगा सकता हो, तथा सब शास्त्रों में विशारद हो—राजा को ऐसा दूत नियुक्त करना चाहिए।[8] आचार्य आगे फिर लिखते है कि दूत ऐसा हो जो—राज कार्य में अत्यन्त उत्साही, प्रीतियुक्त, निष्कपटी, पवित्र, चतुर, पुरानी बातों को भी याद रखने वाला अर्थात् प्रखर बुद्धिवाला, देश-काल के वातावरण के अनुसार कार्य करने वाला सुन्दर, निर्भय तथा कुशल वक्ता हो।[9] ऐसे दूत यदि कोई राजा नियुक्त करता है तो उस राज्य के मनोरथ सिद्ध हो जाते है। रामायण में भी हमें दूत की योग्यता के बारे में उल्लेख मिलता है। भरत द्वारा राम से दूत की योग्यता के बारे में पूछे गए प्रश्न के उत्तर में राम ने कहा—राजदूत गुणवान तथा सद्बुद्धि युक्त होना चाहिए। सुन्दरकाण्ड में दूत की योग्यता बताते लिखा है कि—दूत शास्त्रविद् बोलने मे चतुर, सहृदय, बुद्धिमान, प्रतिभासम्पन्न, ईमानदार, उच्चकुल में जन्म लेने वाला होना चाहिए।[10] अतः दूत के गुण राजा के कार्यों को सफल बनाते है। यदि दूत उत्तेजित नहीं होगा, क्रोध नहीं करेगा, सांत्वना पूर्ण शैली में बात करेगा तो राजा के उद्देश्य निश्चित रूप से पूरे होंगे और यदि वह क्रोध वश बात करेगा तो वह राजा के उद्देश्यों को समूल नष्ट कर देगा।[11] उद्योग पर्व में दूत के आठ विशिष्ट गुणों का उल्लेख हुआ है— वह स्तब्ध (ढीठ) न हो, कायर न हो, दीर्घ सूत्री (मन्द) न हो, दयालु व सुशील हो, दूसरे पक्ष में न मिलने वाला हो, रोगरहित व मधुरभाषी हो।[12] कामन्दक ने लिखा है दूत वाचाल, बात को याद रखने वाला, विशेषवक्ता, अस्त्र-शस्त्र में पण्डित तथा कार्यों का अभ्यास करने वाला राजा का दूत हो।[13] कामन्दक ने आगे लिखा है कि दूत तर्क व चेष्टा को जानने वाला हो, स्मृतिवाला हो, पराक्रमी, क्लेश व परिश्रम को सहने वाला हो, चतुरता, काल बुद्धि उपार्जन करने वाला होना चाहिए।[14]

दूतों के प्रकार

आचार्य सोमदेव ने दूत के गुणों के आधार पर उन्हें तीन भागों में बांटा है—1. निःसृष्टार्थ दूत, 2. परिमितार्थ दूत, 3. शासनहर दूत।[15]

1.निःसृष्टार्थ दूत

इस प्रकार के दूत वे थे जिनके द्वारा किए गए संधि-विग्रह को उसका स्वामी प्रमाण मानता था तथा इसे अपने राज्य के कार्य-सिद्धि के हित में बातचीत करने का पूर्ण अधिकार था।[16] अर्थात यह दूत राज्य की प्रमुख गतिविधियों में पूर्ण हिस्सेदार था तथा स्वयं की सूझ बूझ से राज्य के लिए महत्त्वपूर्ण फैसले कर सकता था। एक प्रकार से यह अमात्य का अधिकार रखने वाला दूत था।

2.परिमितार्थ दूत

राजा द्वारा निर्धारित सीमा के भीतर दूसरे राजा से वार्तालाप करने का अधिकार इस दूत को था। इस दूत को राजा द्वारा भेजे गए सन्देश को शत्रु राजा के सामने कहने का अधिकार था। यह भी एक मंत्री के बराबर था किंतु उससे एक चौथाई कम।[17]

3. शासनहर दूत

यह दूत अपने राजा के संदेश दूसरे राजा के पास ले जाता था अर्थात यह केवल राजकीय पत्र एवं संदेश ले जाने वाला दूत था। इसमें मन्त्रियों के आगे गुण थे।[18] इस प्रकार दूतों को अपनी श्रेणियों के आधार पर कार्य बांटे गए थे तथा वे उन्ही के अनुरूप कार्य करते थे। मिताक्षरा ने भी इन तीनों प्रकार के दूतों का वर्णन किया है।[19] कामन्दक कहता है स्वाभाविक दूत कर्म में प्रवृत्ति वाला, प्रयोजन मात्र अर्थ का वक्ता, राजा की आज्ञा ले जाने वाला तथा किसी एक दूत कर्म के लक्षण से हीन दूत के तीन प्रकार है।[20]

दूत के कार्य

दूत के कौन-कौन से कार्य होने चाहिए इस संबंध में हमें लगभग सभी प्राचीन राजधर्म शास्त्रों में उल्लेख मिलता है। आचार्य सोमदेव ने भी इस संबंध में प्रकाश डाला है उन्होंने दूत के निम्नलिखित कार्य बताए है—

1. नैतिक उपाय द्वारा शत्रु के सैनिक संगठन को नष्ट करना।
2. राजनैतिक प्रयासों द्वारा शत्रु की शक्ति को नष्ट करना तथा शत्रु पक्ष के विरोधियों को साम-दाम आदि उपायों द्वारा वश में करना।
3. शत्रु के पुत्र, परिवार जनों व कारागार में बन्दियों में (धन) द्रव्यदान द्वारा भेद पैदा करना।

4. शत्रु द्वारा अपने देश में भेजे गए गुप्त पुरुषों का ज्ञान प्राप्त करना।
5. सीमाधिपति, आटविक, कोष, देश, सैन्य व मित्रों की परीक्षा करना।
6. शत्रु के यहां विद्यमान रत्न, हाथी, घोड़े, कन्या आदि वस्तुओं को स्वयं के राजा के लिए उपलब्ध कराना।
7. शत्रु के मंत्री या सेनापति आदि में गुप्तचरों के प्रयोग से (भेद) क्षोभ पैदा करना—ये दूत के कार्य है।[21]

दूत के लिए एक कार्य और दिया गया है कि यदि शत्रु के मुख से अपने राजा की निंदा हो रही है तो उसे शांत नहीं रहना चाहिए बल्कि उसका यथायोग्य प्रतिकार करना चाहिए।[22]

आचार्य आगे लिखते है कि दूत का यह भी कर्त्तव्य बनता है कि वह शत्रु राजा के पुरोहित, सेनापति, मंत्री आदि के समीपवर्ती पुरुषों को धन आदि देकर अपने पक्ष में करे तथा शत्रु के मन की गुप्त बातें (युद्धादि) एवं उसके कोष, सेना आदि की जानकारी अपने राजा को दे।[23] इस प्रकार की गतिविधियों से राजा की शक्ति में वृद्धि होती है।

दूत के कार्यों के संबंध में आचार्य कौटिल्य लिखते है कि अपने राजा के संदेश दूसरे तक ले जाना, तथा उसके संदेश लाना, संधिभाव बनाये रखना, अपने राजा के प्रताप को बनाए रखना, अधिकाधिक मित्र बनाना, शत्रु पक्ष के पुरुषों को तोड़ना, शत्रु के मित्रों को उससे विमुख करना, कार्यरत अपने गुप्तचरों, तथा सैनिकों को संकट से पूर्व निकाल लाना, शत्रु के बान्धवों और रत्न आदि का अपहरण करना, शत्रु देश में कार्यरत अपने गुप्तचरों के कार्यों का निरीक्षण करना तथा समय आने पर पराक्रम भी दिखाना, शत्रु पक्ष के बन्धकों को सशर्त छोड़ना तथा दोनों राजाओं में भेट कराना ये दूत के कार्य है।[24] आचार्य मनु ने दूत के कार्यों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि दूत ही वह व्यक्ति है जो राजा व शत्रु में मेल करा सकता है तथा मिले हुए शत्रुओं में फूट डालकर उन्हें अलग कर सकता है। दूत ऐसा व्यक्ति है जो शत्रु पक्ष के लोगों में फूट पैदा कर देता है।[25] कामन्दक ने दूत के कार्यों का विस्तृत विवरण दिया है उनके अनुसार दूत अपने स्वामी की आज्ञानुसार उत्तरोतर स्थानों में जाए, अपने तथा दूसरे के राज्य का विचार से भेद ले, मित्र तथा जंगल के रहने वालों को अपने अन्त:पुर का रक्षक नियत करे, अपनी सेना की सिद्धि के लिए जल व थल के मार्गों का ज्ञान प्राप्त करें, बिना जाने शत्रु के पुर व सभा में प्रवेश न करे, राज्य के किले की रक्षा करे, शत्रु के कोष, बल, मित्र आदि का ज्ञान प्राप्त करे।[26] आचार्य आगे लिखते है कि सन्ताप, कुल,

ऐश्वर्य, त्याग, उन्नति की श्रेष्ठता, अक्षुद्रता और श्रेष्ठता शत्रु पक्ष के सामने रखे।[27] राजा के पालकों को अपने अधीन करना, युद्ध और पलायन की भूमिका का ज्ञान रखना यह दूत का कार्य है तथा शत्रु पक्ष के दूत की चेष्टाओं का ज्ञान प्राप्त करना भी दूत के कार्यों में आता है।[28] इस प्रकार दूत के कार्य विस्तृत थे जिन्हें पूर्ण करने के लिए दूत को बड़ी सावधानी रखनी पड़ती थी।

आचार्य सोमदेव ने दूत के कार्यों के बाद राजा को कुछ निर्देश दिए है जिनमें बताया गया है कि दूत का वध वर्जित था। सोमदेव ने लिखा है कि दूत द्वारा महान् अपराध किए जाने पर भी उसका वध नहीं किया जाना चाहिए।[29] यदि चाण्डाल भी दूत बनकर आए तो राजा को उसे भी अपना कार्य सिद्ध करने देना चाहिए अर्थात उसका वध नहीं करना चाहिए।[30] यही बात हमें यशस्तिलक में मिलती है कि दूत चाहे चाण्डाल हो या ब्राह्मण उसका वध नहीं करना चाहिए।[31] रामायण में लिखा है अच्छे लोग दूत-वध की आज्ञा नहीं देते लेकिन उसे कोड़े मारने, तथा मुण्डित कर बाहर निकालने की आज्ञा अवश्य दे सकते है।[32] आचार्य लिखते है कि किसी भी परिस्थिति में राजा को दूत का वध नहीं करना चाहिए[33] क्योंकि सभी राजा अपने दूत के मुख से ही बोलते है।[34] इनके द्वारा ही राजा के कार्यों (संधि विग्रह) की सिद्धि होती है।

गुप्तचर

पड़ौसी राज्यों की जानकारी यद्यपि दूतों द्वारा प्राप्त हो जाती थी फिर भी गुप्तचर सदेव कार्यरत रहते थे तथा उपर्युक्त सूचनाएं एकत्रित कर राजा तक पहुँचाते रहते थे। गुप्तचरों को सेना के अष्टांग का एक भाग माना गया है।[35] गुप्तचर प्रत्येक राज्य में सक्रिय रहते थे तथा एक राज्य से दूसरे राज्य में जाया करते थे कभी-कभी गुप्तचर की संभावना से साधु भी पकड़ लिए जाते थे।[36] शांति पर्व में भी उल्लिखित है कि गुप्तचर अपने देश में भी रखे जाते थे तथा पड़ोसी राज्य में भी भेजे जाते थे।[37] कामन्दक ने गुप्तचर की परिभाषा बताते हुए लिखा है कि दूत प्रकाश में कार्य करता है तथा जो रात में छिपकर कार्य करता है वह गुप्तचर है।[38]

वाल्मीकि ने गुप्तचर की नियुक्ति के संबंध में लिखा है जो राजा गुप्तचर नियुक्त नहीं करता वह प्रजा द्वारा त्याग दिया जाता है।[39]

योग्यता (नियुक्ति)

आचार्य सोमदेव ने गुप्तचरों की नियुक्ति राजा के लिए आवश्यक मानी है। वे लिखते है कि जिस राजा के यहाँ गुप्तचर नहीं होते उस पर आन्तरिक व बाहरी

शत्रुओं द्वारा आक्रमण किया जा सकता है।[40] अतः विजिगीषु (राजा) के लिए गुप्तचर की नियुक्ति परम आवश्यक है। आचार्य ने लिखा है कि गुप्तचर देश व परराष्ट्र के संबंधों का ज्ञान कराने के लिए नेत्र का काम करते है।[41] आन्तरिक व बाहरी सुरक्षा के लिए राजा के लिए गुप्तचरों का उपयोग आवश्यक माना गया है। जैनाचार्य ने गुप्तचरों के गुणों की चर्चा करते हुए लिखा है कि गुप्तचर आलस्यहीन, संतोषी, उत्साही, निरोगी, सत्यवादी और विचारशील होना चाहिए।[42] महाभारत में भी हमे गुप्तचर की नियुक्ति तथा गुणों के संबंध में उल्लेख मिलता है—भीष्म कहते है जिन लोगों की अच्छी तरह से परीक्षा कर ली गई हो, बुद्धिमान होने पर भी देखने में गूँगे, अन्धे और बहरे लगते हो, तथा भूख, प्यास और परिश्रम सहने की शक्ति रखते हो, ऐसे लोगों को ही गुप्तचर बनाकर आवश्यक कार्यों में नियुक्त करना चाहिए।[43] योग्यता के विषय में कामन्दक कहते है—गुप्तचर ऐसा हो जो, लोगों के मन की बात जान ले, उसकी स्मृति शक्तिशाली होनी चाहिए, मधुरभाषी होना चाहिए, शीघ्रगामी होना चाहिए और प्रत्युत्पन्नमति भी होना चाहिए।[44] कामन्दक अपनी बात में यह दर्शाना चाहता है कि गुप्तचर राजा के लिए 'चारचक्षुर्महीपतिः' (राजा के नेत्र) है।[45] वाल्मीकि ने गुप्तचरों की योग्यता के सन्दर्भ में रावण के गुप्तचरों का वर्णन किया है और कहा है कि रावण के गुप्तचर विश्वासपात्र, शूरवीर, धीर एवं निर्भय थे ये शत्रु की शक्ति का सही मूल्यांकन करने वाले थे, ये किलेबन्दी करना जानते थे तथा शत्रु पक्ष की योजनाओं, और सैनिक गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करते थे।[46]

गुप्तचरों के प्रकार

गुणों के आधार पर गुप्तचर कई प्रकार के होते थे—आचार्य सोमदेव ने 34 प्रकार के गुप्तचरों का उल्लेख किया है इनमें कुछ अस्थायी (जिन्हे राजा अपने ही देश के मंत्री/पुरोहित की जाँच के लिए रखता था) तथा कुछ स्थायी (जिन्हे शत्रु राजा के देश में भेजा जाता था) थे। आचार्य ने निम्नलिखित नामों का उल्लेख किया है— छात्र, कापटिक, उदास्थित गृहपति, वैदेहिक, तापस, किरात, यमपट्टिक, अहितुणिक, शोणीक (शौचक) शोभिक, पाटच्चर, विट, विदूशक, पीठमर्द, नर्तक, गायक, वादक, वाग्जीवन, गणक, शकुनिक, भिषग, ऐन्द्रजालिक, नेमितिक, सूद आरालिक, संवादक, तीक्ष्ण, क्रूड, रसद, जड़, मूक, बधिर और अन्ध।[47] इस प्रकार राज्य में विभिन्न प्रकार के चरों का जाल सा बिछा रहता था। आचार्य कौटिल्य ने गुप्तचरों के प्रकारों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है— उन्होंने दो प्रकार के गुप्तचर बताए है—1. पंचसंस्था 2. संचर।[48] पंचसंस्था में उन्होंने कई प्रकार के (5) चारों का उल्लेख

किया—1. कापटिक (ऐसा साहसी विद्यार्थी, जो लोगों के मन को पढ़ ले) 2. उदास्थित (ऐसा कृत्रिम साधु, जो साधुत्व के वास्तविक कर्त्तव्यों से च्युत हो, किंतु बुद्धिमान व पवित्र चरित्र वाला हो) 3. वैदेहक़ (ऐसा व्यापारी जो व्यापार से अपनी जीविका न चला सके, किंतु मेधावी एवं उत्तम चरित्र वाला हो) 4. तापस (ऐसा जो तपस्या कर रहा हो, जिसने सिर मुण्डा लिया हो, या जटाए बढ़ा ली हो) 5. गृहपति[49] (ऐसा गृहस्थ जो ऐसा कृषक हो, जो अपनी जीविका न चला सके किंतु मेधावी एवं उत्तम चरित्र वाला हो)। आचार्य ने दूसरे प्रकार के गुप्तचर संचर (घुमक्कड़)/संचार के अन्तर्गत चार प्रकार के गुप्तचरों का उल्लेख किया है— 1. सत्री (ये अनाथ होते है इनका पालन पोषण राज्य द्वारा ही होता है इन्हे हस्तरेखा, इन्द्रजाल, हस्तलाधव (हाथ की सफाई की विद्या) आदि मे पारंगत किया जाता है)। 2. तीक्ष्ण— (जो जीवन से इतने निराश होते है कि धनोपार्जन के लिए हाथी से भी लड़ जाते है) 3. रसद—(जो अपने सम्बन्धियों के लिए भी कोई स्नेह नहीं रखते, ये आलसी व क्रूर होते है)। 4. भिक्षकी/परिव्राजिका—(दरिद्र ब्राह्मण–विधवा, चतुर एवं जीविकोपार्जन की इच्छुक, जिसका अन्त:पुर में मान हो, और जो महामात्रों एवं मंत्रियों के कुटुम्ब में प्रवेश पाती रहती है)।[50] ये सभी गुप्तचर राज्य भर में घूमा करते थे तथा गुप्त रूप से राजा के विषय में एवं शासन-कार्य के विषय में संतोष व असंतोष की बातों का पता लगाते थे। इस प्रकार गुप्तचर राज्य के भीतर व बाहर की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर राजा तक पहुँचाते थे तथा राजा उन समस्याओं का निराकरण करता था। कौटिल्य ने आगे लिखा है कि समाहर्ता भी कुछ गुप्तचर नियुक्त करता था, ये गुप्तचर उपद्रव फैलाने वालो का दबाने, घूस लेने वाले न्यायाधिकारियों एवं अन्य विभागों के अधीक्षकों का भेद बताने, अनाधिकृत ढंग से मुद्रा बनाने वालों का पता लगाने, बलात्कार करने वालों, चोरों, डाकुओं एवं अपराधियों की खोज करने के लिए तैनात किये जाते थे। इस प्रकार गुप्तचर राज्य की हर प्रकार की गतिविधि के लिए नियुक्त किये जाते थे।

सन्दर्भ

1. कौटिल्य, **अर्थशास्त्र** 9, 1
2. सोमदेव, **नीतिवाक्यामृत** 30, 70–72
3. वही, 30, 70
4. वही, 30, 71
5. वही, 30, 72

6. वही,13, 1
7. वही,13, 2
8. **मनुस्मृति**–7, 63
9. वही, 7, 64
10. वाल्मीकि, **रामायण, सुन्दरकाण्ड**, 82, 16
11. उपर्युक्त 51, 1 व 10
12. वेद व्यास, **महाभारत, उद्योगपर्व** 37, 27
13. **कामन्दक**, **नीतिसार** 12, 2
14. वही, 12, 26
15. **नीतिवाक्यामृत** 13, 3
16. वही,13, 4
17. काणे पी.वी., **धर्मशास्त्र का इतिहास** 2 पृ. 635–636
18. वही, 2 पृ. 636
19. **याज्ञवल्क्य स्मृति** 1, 328
20. **कामन्दक** 12, 3
21. **नीतिवाक्यामृत** 13, 8
22. वही, 13, 11
23. वही, 13, 9
24. कौ. **अर्थशास्त्र** प्र.11 अ. 5
25. **मनुस्मृति** 7, 66
26. **कामन्दक** 12, 4—7
27. वही, 12, 15
28. वही, 12, 23–24
29. **नीतिवाक्यामृत** 13, 17
30. उपर्युक्त 13, 20–21
31. **यशस्तिलक** 3 पृ. 564
32. **रामायण** 5/52/14–15
33. **नीतिवाक्यामृत** 13, 19
34. वही, 13, 18

35. **महाभारत शांतिपर्व** 59, 41
36. **सुखबोधा–पत्र** 122
37. **महाभारत शांतिपर्व** 58, 6–7
38. **कामन्दक** 12, 32
39. **रामायण अरण्यकाण्ड** 33, 5
40. **नीतिवाक्यामृत** 14, 6
41. वही, 14, 1
42. वही, 14, 2
43. **महाभारत शांतिपर्व** 69, 8
44. **कामन्दक** 12, 25
45. वही, 12, 28
46. **रामायण युद्ध काण्ड** 37, 7–13
47. **नीतिवाक्यामृत** 14, 8
48. कौटिल्य, **अर्थशास्त्र** 1, 11–12
49. वही, 1, 11
50. वही, 1,12

❑

Dr. Ritesh Vyas
Principal,
Sister Nivedita Girls College,
Mohta Sarai, Bikaner (Raj.)
Mob. 9828777455

उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के मूल्यों की उपादेयता

● डॉ. अविनाश पारीक

उच्च शिक्षा में हमारी राष्ट्रीय संस्कृति के समावेश की आवश्यकता क्यों पड़ी? यह प्रश्न आज समसामयिक है, क्योंकि यह सत्य हैं कि उच्च शिक्षा का सम्बन्ध केवल 'ज्ञानार्जन' से ही नहीं है, बल्कि 'व्यक्तिगत विकास' तथा 'आजीविका' से भी है। दूसरे शब्दों में, यह हमारी 'भौतिक' एवं 'आत्मिक' आवश्यकताओं के दो किनारों के मध्य बहने वाली 'प्रकाशधारा' है, जो न केवल उन्हें परस्पर जोड़ती है, बल्कि उनके मध्य एक उचित 'सन्तुलन' बनाए रखने में भी सक्षम है।[1] आज कितने ऐसे लोग हैं जो राष्ट्रीय संस्कृति के अन्तर्गत 'ज्ञान पिपासा' को शान्त करने हेतु उच्च शिक्षा पाना चाहते हैं? संसार का प्रत्येक देश अपनी निजी विशेषताओं और कमियों के लिए जाना जाता हैं, कालान्तर में यही विशेषताएं राष्ट्रीय चरित्र के रूप में उभरती हैं। यही राष्ट्रीय चरित्र संस्कृति के विविध क्षेत्रों को समावेशित करता है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि किसी देश की पहचान उसकी संस्कृति से होती है। 'शिक्षा' इसी संस्कृति के हस्तान्तरण, संरक्षण और संवर्धन का साधन है, अत: किसी भी देश की शिक्षा उस देश की संस्कृति पर ही आधारित होती है और हमें उस संस्कृति की पहचान कराती है। ब्रिटेन एवं फ्रांस दोनों ही यूरोपीय देश हैं तथा दोनों में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से बहुत अधिक अन्तर नहीं हैं, परन्तु दोनों की उच्च शिक्षा व्यवस्था दूर से पहचानी जा सकती हैं।

विश्वविद्यालय आयोग-1902 में शिक्षा की भारतीय परम्परा का उल्लेख करते हुए यह मत व्यक्त किया कि शिक्षा केवल जीविका का साधन नहीं है और न सिर्फ नागरिकता की ही शिक्षा है बल्कि शिक्षा का कार्य आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश कराना है और व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह सत्य का अनुसरण कर सके और सद्गुणों का विकास तथा अभ्यास कर सके।[2] इस प्रकार

विश्व के प्राय: हर देश की 'उच्च शिक्षा' की अपनी पहचान है। मनुस्मृति ग्रन्थ के अध्याय 2 के श्लोक संख्या 20 के अनुसार भारत देश को शिक्षा की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ और जगद्गुरु देश कहा गया था।[3] दुर्भाग्य से आज उस देश की शिक्षा की कोई पहचान तक नहीं है। ब्रिटेन के एक उपनिवेश के रूप में उसकी पहचान अवश्य सम्भव है, परन्तु स्वतंत्र भारत में कोई पहचान सम्भव नहीं। इसलिए उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के समावेश का प्रश्न उठाया गया है। उच्च शिक्षा को राष्ट्रीय संस्कृति के अनुरूप इस प्रकार नियोजित किया जाए कि वह समुचित रूप से सामाजिक और राष्ट्रीय उत्तरदायित्व की भावना का विकास करे और हमारी आज की आवश्यकताओं को अधिकतम सीमा तक पूरा करे।

राष्ट्रीय संस्कृति की परिभाषा देते हुए जे. एफ. ब्राउन ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि, ''राष्ट्रीय संस्कृति किसी समुदाय के सम्पूर्ण व्यवहार का एक प्रतिरूप है जो अंशत: भौतिक पर्यावरण से अनुकूलित होता है। यह पर्यावरण प्राकृतिक भी हो सकता और मानव निर्मित भी, परन्तु मुख्यतया यह प्रतिरूप सुनिश्चित विचार धाराओं, प्रवृतियों, मूल्यों तथा आदतों द्वारा अनुकूलित होता है जिनका विकास समूह द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है।''[4] आज ऐसी कौन सी आवश्यकता है जिसके लिए हमें हमारी सांस्कृतिक विरासत को समझने एवं जानने की आवश्यकता पड़ी है? राष्ट्रीय संस्कृति की दृष्टि से उच्च शिक्षा के अन्तर्गत हम उन सभी प्रकार के भारतीय संस्कारों का समावेश करते है जिससे एक सभ्य समाज का निर्माण हो सके। इससे स्पष्ट है कि संस्कृति के अन्तर्गत मानव द्वारा अर्जित ज्ञान, उसके विश्वास, उसके द्वारा निश्चित किए गए मूल्य, उसकी आदतें, उसके रीति-रिवाज आदि सभी कुछ आता है। अत: हमारे द्वारा अर्जित किया गया ज्ञान, हमारा विश्वास, हमारे समाज के मूल्य, हमारी आदतें, हमारे रीति-रिवाज आदि का अध्ययन ही भारतीय संस्कृति का अध्ययन होगा।[5] एक ओर तो इस संस्कृति का मूल रूप आर्यो से पूर्व मोहनजोदड़ों आदि की सभ्यता तथा द्रविड़ों की महान सभ्यता तक प्रवेश करता है। दूसरी ओर इस संस्कृति पर आर्यों की बहुत गहरी छाप है, जो भारत में मध्य एशिया से आये थे। पीछे चलकर यह संस्कृति उत्तर-पश्चिम से आने वाले तथा फिर समुद्र की राह से पश्चिम से आने वाले लोगों से बार-बार प्रभावित हुई। इस प्रकार हमारी राष्ट्रीय संस्कृति में समन्वय तथा नए उपकरणों को पचाकर आत्मसात करने की अद्भुत योग्यता थी।

वर्तमान उच्च शिक्षा में बाजार हावी है आज ज्ञान के लिए भूख कम और बाजार में अपना सामर्थ्य स्थापित करने के लिए योग्यता अर्जन करना जरूरी

समझा जा रहा है। यही वजह है कि उच्च शिक्षा का ढांचा बाजार के मूल्यों पर आधारित भौतिकवाद पर टिका हुआ है इस प्रकार वर्तमान में शिक्षा का लक्ष्य मात्र आजीविका कमाना मात्र रह गया। इसलिए हमारी सांस्कृतिक विरासत जिसमें सामाजिक एवं राष्ट्रीय कर्त्तव्यों का बोध कराना तथा उनकी पालना को भी सुनिश्चित किया जाता है। शिक्षित व्यक्तियों को धर्मसम्मत आचरण एवं व्यवहार हेतु शिक्षित किया जाता था। अर्थात उच्च शिक्षा में आज एक बार फिर से नैतिक एवं चारित्रिक विकास के अवयवों को पाठ्यक्रम में शामिल करना आवश्यक है। इससे यह स्पष्ट होता है कि हमारी सांस्कृतिक विरासत शैक्षिक दृष्टि से समुन्नत थी। उदाहरण के रूप में जब एक समाज में आध्यात्मिकता एक विशेष सांस्कृतिक संरचना के रूप में होती है तो शैक्षिक प्रक्रिया जीवन के नैतिक एवं शाश्वत मूल्यों पर जोर देती है जबकि दूसरी तरफ एक समाज की संस्कृति भौतिकवादी होती है तो उसकी शैक्षिक संरचना भौतिक मूल्यों को प्राप्त करने में ढली हुई होती है, आज पाश्चात्य देश विज्ञान का उपयोग बाह्य जगत में अधिकतम साधनों एवं उपकरणों को जुटाने में कर रहे हैं।[6] इसका परिणाम वर्तमान में सभी देशों को भोगना पड़ रहा है, जैसे प्रदूषण एवं भ्रष्टाचार इत्यादि असन्तुलित विकास का ही उदाहरण है। राष्ट्रीय संस्कृति की विरासत में आज ''जीयो और जीने दो'' तथा सर्वे सन्तु निरामया का मार्ग प्रशस्त हो रहा है। यह न केवल पाश्चात्य संस्कृति की तर्ज पर केवल मनुष्य मात्र के कल्याण की नहीं अपितु सर्वकल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है।

हमारी सांस्कृतिक विरासत में प्राचीन गुरुकुलों के विद्यार्थियों को श्रम एवं स्वावलम्बन के साथ सम्पूर्ण जीवन शैली का प्रशिक्षण मिलता था, जिसमें अनुशासन, श्रम, स्वावलम्बन, सहयोग, सेवा, सहिष्णुता, आदि मूल्यों का प्रशिक्षण एवं पालना दोनों ही सुनिश्चित होता था परन्तु आज के छात्रावासों में कठोर अनुशासन तथा जीविकोपार्जन के साधनों के लिए प्रेरित किया जाता है। हमारे परतंत्राताकालीन इतिहास में विदेशी आक्रान्ताओं के प्रभाव से राष्ट्रीय संस्कृति के हनन होने के साथ ही विदेशी एवं पाश्चात्य संस्कृति को प्रोत्साहन मिला। इससे हमारी जीवन शैली में परिवर्तन होने के कारण ही सांस्कृतिक विरासत का भी हनन हुआ।[7] सांस्कृतिक विरासत में जहां समावर्तन का अभिप्राय शिक्षा की सभी परीक्षाओं को उत्तीर्ण करना तथा उत्कृष्ट नागरिक के रूप में समाज के पथप्रदर्शक के रूप में प्रशिक्षित होने का मानक माना जाता था। यही वर्तमान में उपाधि वितरण तथा अवधिपूर्ण करने का प्रमाण होता है। इस प्रकार हमारी शिक्षा व्यवस्था की प्रक्रियाओं में हमारी सांस्कृतिक विरासत के समावर्तन को पुनः जीवित करने की आवश्यकता हैं।

हमारी संस्कृति में विद्यार्थियों के लिए शिक्षण पद्धतियों का आधार सामान्यतः मौखिक रूप से होता था और प्रायः प्रश्नोत्तर, शंका समाधान, व्याख्यान और वाद-विवाद था। पहले भाषा की शिक्षा के लिये अनुकरण विधि और कृषि, पशुपालन, कला-कौशल, सैन्य शिक्षा और आयुर्विज्ञान आदि क्रिया प्रधान विषयों की शिक्षा कथन, प्रदर्शन और अभ्यास विधि से दी जाती थी। उस समय की शिक्षा पद्धति आज की तरह कलम और पुस्तकें लेकर पढ़ने-लिखने का अभ्यास करने की बजाय विद्यार्थी का चरित्र गठन करना और जीवन संघर्ष में उसे अपना और दूसरों का हित कर सकने योग्य बनाना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था।

हमारे यहां विश्वविद्यालय स्तर के शिक्षकों में व्याख्यान विधि के लिए कुछ विशेष आकर्षण है। व्याख्यान देने की कला चाहे आती हो या नहीं परन्तु हर शिक्षक इसे सरलतम और प्रायः एक मात्र विधि मानकर अपना लेता है। आज अमेरिका के महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की पढ़ाई में प्रायः निम्नलिखित शिक्षण पद्धतियों का अनुसरण किया जाता है[8]—(1) व्याख्यान (2) चर्चा विधि (3) प्रायोगिक विधि (4) श्रव्य और दृष्य साधनों का उपयोग 5. संगोष्ठी एवं कार्यशालाओं का आयोजन आदि। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के इस असन्तुलित विकास ने मनुष्य को संवेदनहीन तथा स्वान्तः सुखाय के लिए प्रेरित करता है।[9] हमारी राष्ट्रीय संस्कृति सर्वजन हिताय तथा संवेदनशील प्राणी के रूप में तैयार करती है। प्राचीन शिक्षण पद्धतियां ज्ञान आधारित थी वही वर्तमान शिक्षण पद्धतियां सूचना आधारित है। आज यदि देखें तो विद्यालय स्तर पर तो पूर्ण रूप से केवल सूचना आधारित पाठ्यक्रम एवं क्रियाएं ही हैं। वहीं उच्च शिक्षा में समालोचनात्मक चिन्तन तथा वैज्ञानिक अभिक्षमता को प्रेरित किया जाना चाहिए।

यूनेस्को की डैलर्स समिति के प्रतिवेदन में कहा गया है कि ''किसी भी देश की शिक्षा का स्वरूप उस देश की संस्कृति एवं प्रगति के अनुरूप होना चाहिए''।[10] क्या आज हमारे देश की शिक्षा का स्वरूप इस प्रकार का है? स्वतंत्रता के बाद देश की शिक्षा की स्थिति पर दृष्टि डालते हैं तो ध्यान में आता है कि शिक्षा का विस्तार तो हुआ परन्तु शिक्षा प्राप्त करके स्नातक एवं परास्नातक की उपाधि प्राप्त छात्रों की स्थिति क्या है? वर्तमान शिक्षा का पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को नौकर या बेकार बनाने का उत्तरदायित्व निभा रहा है। प्राचीनकाल से छात्रों को वेद, वेदांग, पुराण, उपनिषद के साथ-साथ लौकिक ज्ञान भी दिया जाता था। धार्मिक साहित्य के अलावा गणित, ज्योतिष, काव्य,

इतिहास, दर्शन, राजनीतिशास्त्र व अर्थशास्त्र, कृषि विज्ञान, मूर्तिकला, सैनिक शिक्षा, आयुर्वेद तथा शिल्प विज्ञान विषयों का ज्ञान दिया जाता था। वर्तमान पाठ्यक्रम में व्यावहारिकता, प्रायोगिकता का निरन्तर अभाव दिखाई दे रहा है। छात्र रटन्त प्रक्रिया से अंक तो प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु व्यावहारिक ज्ञान के अभाव में स्वतंत्र चिन्तन करने की क्षमता का विकास नहीं हो पाता है।[11] इसी प्रकार वर्तमान पाठ्यक्रमों, पाठ्य-पुस्तकों में राष्ट्रीय संस्कृति का समावेश नहीं किया जा रहा है। इसके कारण छात्र न केवल हमारी श्रेष्ठ ज्ञान परम्परा से वंचित रहता है, बल्कि अपनी जड़ों से और संस्कृति से भी कट जाता है।

हमारी परीक्षा पद्धति का स्तर गिरने का बहुत बड़ा कारण यह है कि यह रटने पर बल देती है। राधाकृष्णन् आयोग (1948) ने इस दोष की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए ठीक ही कहा था कि यदि विश्वविद्यालय शिक्षा में केवल एक ही सुधार करना हो तो उसकी परीक्षा पद्धति में सुधार किया जाना चाहिए।[12] आज केवल मात्र एक बाह्य परीक्षा ही विद्यार्थियों के भविष्य का निर्णय करती है। सभी विश्वविद्यालयों में एक जैसा पाठ्यक्रम तथा एक सी परीक्षा पद्धति आज तक विकसित नहीं हो पायी है। आज की परीक्षा पद्धति में व्यावहारिक ज्ञान की अपेक्षा सैद्धान्तिक ज्ञान से सम्बन्धित प्रक्रिया पर अधिक बल दिया जा रहा है। उच्च शिक्षा में शिक्षकों की गुणवत्ता पर जितना ध्यान हमारी राष्ट्रीय संस्कृति के अनुरूप दिया जाना चाहिए, आज अच्छे योग्य शिक्षक तैयार नहीं हो पाये जिनमें सांस्कृतिक विरासत के प्रति चिन्तनशीलता हो। टैगोर ने कहा था ''उच्च शिक्षा में सिखाएं वही जो सीखना कभी बन्द न करें।''[13] परन्तु आज सामान्य शिक्षक जब सिखाना शुरू करता है तब सीखना बन्द कर देता है। शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों की राष्ट्रीय संस्कृति के आधार पर समीक्षा आज अति आवश्यक है।

भारत का उच्च शिक्षा तंत्र अमेरिका, चीन के बाद विश्व का तीसरा सबसे बड़ा उच्च शिक्षा तंत्र है। विगत 73 वर्षों में देश के विश्वविद्यालयों की संख्या में 11.6 गुना, महाविद्यालयों में 12.5 गुना, विद्यार्थियों की संख्या में 60 गुना और शिक्षकों की संख्या में 25 गुना वृद्धि हुई है। देश को यदि 2020 तक सुपर पावर बनना है तो उसके लिए राष्ट्रीय संस्कृति से ओतप्रोत पढ़े-लिखे तथा दक्ष कर्मियों की आवश्यकता है। हमें ज्ञान को दूसरों से लेना नहीं है बल्कि हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि हम स्वयं कैसे ज्ञानवान बने। यह हमारी असफलता ही है कि हम राष्ट्रीय संस्कृति के लिए कार्य करने वाले उच्च गुणवत्ता वाले शिक्षा केन्द्रों को आगे नहीं बढ़ा पा रहे हैं। इसका प्रमुख कारण

वर्तमान में वैश्विक शिक्षा, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, नस्लभेद, राजनीतिक स्वार्थ चरम सीमा पर है। जबकि वर्तमान युग की चुनौतियों का सामना करने के लिए उच्च शिक्षा ने अपना तरीका विकसित कर लिया है और प्रत्येक देश आज अपनी संस्कृति के अनुरूप ढांचा, रीति-रिवाज, व्यवस्था के अनुरूप पाठ्यक्रम का निर्माण कर रहा है। भारत में उच्च शिक्षा में संस्कृति को पढ़ाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? यह सभी के लिए चिन्तन का विषय है।

मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान में वे शैक्षणिक विषय हैं जिनमें प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान के मुख्यत: अनुभवजन्य दृष्टिकोणों के विपरीत, मुख्य रूप से विश्लेषणात्मक, आलोचनात्मक विधियों का उपयोग कर राष्ट्रीय संस्कृति के अन्तर्गत मानवीय स्थिति का अध्ययन किया जाता है। हाल ही में नैसकॉम और मैकिन्से के शोध के अनुसार मानविकी में 10 में से एक भारतीय छात्र ही नौकरी पाने के योग्य है। आज मानविकी के शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में जो विकृतिया, विसंगतिया हैं। वह पाश्चात्य शिक्षा की देन है क्योंकि इसमें हमारे भारतीय मूल्यों, संस्कृति, परम्पराओं, कला, साहित्य, दर्शन, योग शिक्षा को महत्त्व नहीं दिया गया है। इन विषयों पर अनुसंधान के लिए अनुदान देकर प्रोत्साहित किया जाये तथा उत्तम शोध कार्यों को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाये। ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में संश्लेषण लाने की दृष्टि से अंतरविषयी अनुसंधान को प्रोत्साहन मिले। आज भारत के प्राचीन ज्ञान के भण्डार को महत्त्व देकर समकालीन वस्तुस्थिति से जोड़ा जाना अपेक्षित है।

वर्तमान युग विज्ञान एवं भौतिकी का है। अभियांत्रिकी और आधुनिक चिकित्साशास्त्र उसके आधार हैं। अभियांत्रिकी का ज्ञान आधुनिक युग में नये-नये चमत्कार के रूप में भवनों, सड़कों, यंत्रों के रूप में सामने आ रहा है। प्राविधिक शिक्षा के क्षेत्र में एक कुशल राष्ट्रीय जनशक्ति सम्बन्धी सूचना देने की पद्धति होनी आवश्यक है। अभियांत्रिकी शिक्षा केन्द्रों में ग्रामीण क्षेत्र की समस्याओं का विशेष अध्ययन किया जाना चाहिए और उनका समाधान राष्ट्रीय संस्कृति के अन्तर्गत खोजा जाना चाहिए। उद्योगों के साथ ही इन संस्थानों के कार्यक्रमों का समन्वय एवं समावेश आवश्यक है। कृषि विश्वविद्यालय द्वारा क्षेत्रीय जयवायु के आधार पर शोधकार्य हो और कृषि शिक्षा छात्रों को स्वनियोजन के लिए तैयार करे। कृषि विज्ञान केन्द्रों का संचालन एवं समन्वय विश्वविद्यालयों द्वारा किया जाना शोध की दृष्टि से आवश्यक है। आयुर्विज्ञान की शिक्षा का आधार अस्पताल तक सीमित न होकर देश की स्वास्थ्य रक्षा होना चाहिए। आज समाज में प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, होम्योपैथी आदि

पुरातन चिकित्सा विधियों के प्रति उपेक्षा की दृष्टि है। अत: उच्च शिक्षा में इन क्षेत्रों में राष्ट्रीय संस्कृति के समावेश द्वारा नवीन शोध कार्यो की महती आवश्यकता है। आयुर्वेद पूरी तरह से जड़ी-बूटियों और प्राकृतिक खरपतवार से बनी दवाओं का एक विशिष्ट रूप है जो दुनिया की किसी भी दुर्लभ बीमारी का इलाज कर सकती है।[14] आज भी दवाओं की पश्चिमी संकल्पना अपने चरम स्तर पर पहुच गई है, जो इलाज की वैकल्पिक विधियों की तलाश में है। उच्च शिक्षा में एक और विज्ञान है, जिसे हम ध्यान के नाम से जानते हैं तथा भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता के समानार्थी है। अत: उच्च शिक्षा के सभी संकायों में ध्यान, योग एवं प्रारम्भिक आयुर्वेद से सम्बन्धित ज्ञान के समावेश की महत्ती आवश्यकता हैं।

उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के दौर में जहा भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की तेजी से विकसित हो रही अर्थव्यवस्थाओं में दूसरे स्थान पर है, वहीं उपभोक्तावादी दृष्टिकोण व सामाजिक अधो:पतन के दौर में वर्तमान उच्च शिक्षा प्रणाली के अप्रायोगिक, रट्टू प्रणाली व सैद्धान्तिक पद्धति ने वैश्विक मानदण्डों के अनुकूल प्रोफेशनल्स व टैक्नीशियन्स का निर्माण कर सकने में सफल नहीं हो पा रही है।[15] विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के इस युग में लगातार यह महसूस किया जा रहा है कि किसी व्यक्ति को न सिर्फ बेहतर सामाजिक प्राणी बनाने के लिए शिक्षित किए जाने की जरूरत है बल्कि उसे एक उत्पादनशील और रचनाशील प्राणी भी होना चाहिए।[16] अत: यह कहना बिल्कुल सही हैं कि राष्ट्र का भविष्य महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों से शिक्षित मूल्यनिष्ठ छात्रों की मात्रा और गुणवत्ता के आधार पर निर्धारित होता है। आज उच्च शिक्षा संस्थानों में जो शिक्षा प्रदान की जाती है उसमें मूल्य शिक्षा का पूर्णतया अभाव है।

यह स्पष्ट है कि उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के समावेश के क्षेत्रों, जिसमें मानविकी, विज्ञान, अभियांत्रिकी एवं प्रबन्धन शिक्षा में हमारी सांस्कृतिक विरासत के मुख्य तत्त्व प्राचीन वेद, उपनिषद, गीता, रामायण तथा महाभारत आदि हैं। इन ग्रन्थों में निहित प्राचीन आयुर्विज्ञान, अभियांत्रिकी, योग, ध्यान, मानवीय मूल्यों, मर्यादाओं, त्याग, दर्शन को वर्तमान उच्च शिक्षा के पाठयक्रमों में सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूप से जोड़ा जाना अतिआवश्यक है। आज की शिक्षा पद्धति में मानवीय मूल्य, नैतिकता और संवेदनाओं का गला घोट दिया जिससे विद्यार्थियों में असुरक्षा भाव एवं चिन्तनशीलता की सर्वथा कमी दिखायी देती हैं। मनुष्य को मशीन बनाने से पहले क्या यह जरूरी नहीं कि वह सबसे पहले मानव बने, जिसमें उसे अपने जीवन की सार्थकता नजर आए। तनावग्रस्त

उच्च शिक्षा से मुक्ति आज की शिक्षण व्यवस्था की पहली आवश्यकता हो गयी है। ऐसी स्थिति में आज यह आवश्यक हो जाता है कि हमें उच्च शिक्षा के मानदण्ड राष्ट्रीय संस्कृति को ध्यान में रखकर ही तय करने चाहिए।

इस प्रकार उच्च शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में सांस्कृतिक विरासत को शिक्षा का स्वरूप बनाने से ज्ञानवान, कौशल निपुण एवं सेवाभावी विद्यार्थियों का निर्माण किया जा सकता है। इस प्रकार के विद्यार्थी राष्ट्रीय एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपना योगदान दे सकते हैं एवं समस्याओं के समाधान में भी अपनी सकारात्मक भूमिका का निर्वाह करने में सक्षम हो सकते हैं। शिक्षा केवल सूचनाओं का संकलन न हो, शिक्षा जीवन्त होनी चाहिए। उच्च शिक्षा जितनी राष्ट्रीय संस्कृति से युक्त होगी, मनुष्य का जीवन उतना ही गौरवमय, शांतिपूर्ण एवं उन्नत होगा।

सन्दर्भ :

1. राजस्थान बोर्ड जर्नल ऑफ एज्यूकेशन, प्रकाशक—माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर, त्रैमासिक, खण्ड: 44 से 45, अंक: 3-4, मार्च—2005 पृ.सं. 13
2. मंसूरी, आई. के और गुप्ता, यू.जी., **शिक्षा ज्ञानकोश**, खण्ड-1, के. एस. के. पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2008
3. **एतत देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।** मनुस्मृति, अध्याय-2, श्लोक सं. 20
4. ब्राउन जे.एफ., **एज्यूकेशनल सोशियोलॉजी**, न्यूयार्क, प्रेंटिस हॉल, एशिया एडीशन, 1961, पृ. 72
5. दिनकर, रामधारी सिंह, **संस्कृति के चार अध्याय**, उदयांचल प्रकाशन, पटना, 1961, पृ. 11-12
6. आचार्य तुलसी, शिक्षा को बनाए विकास और आनन्द की दीक्षा, आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 2-3
7. राजस्थान बोर्ड जर्नल ऑफ एज्यूकेशन, प्रकाशक—माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर, त्रैमासिक, खण्ड 48-49, अंक 3-4, मार्च-2007, पृ. 45
8. मुखर्जी, श्रीधरनाथ, **भारत में शिक्षा**, आचार्य बुक डिपो, बड़ौदा, 1969, पृ. 238
9. **भारतीय आधुनिक शिक्षा**, प्रकाशक—एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, वर्ष-30, अंक-4, अप्रैल 2009, पृ. 68

10. स्कॉट, जॉन सी., 'द मिशन ऑफ द यूनिवर्सिटी : मेडिवल टू पोस्ट मॉडर्न ट्रांसफोर्मेशन', **द जर्नल ऑफ हायर एजूकेशन** : 77 (प), 2006, पृ. 35
11. कोठारी अतुल, **शिक्षा में नए विकल्प का प्रारूप**, प्रकाशन—शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास, नई दिल्ली, 2017, पृ. 7
12. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (1964-66), 1968, पृ. 329-31
13. अग्निहोत्री, रवीन्द्र, **भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याए,** प्रकाशक-रिसर्च पब्लिकेशन इन सोशल साइंसेज, नई दिल्ली, 1980, पृ. 80
14. वही, पृ. 255
15. राजस्थान पत्रिका, जयपुर, दिनांक 12 अक्टूबर 2011, पृ. 6
16. सिन्हा, मनोज, **समकालीन भारत एक परिचय**, प्रकाशक—ओरियन्ट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2012, पृ. 101

❑

Dr. Avinash Pareek
Associate Professor,
Department of History,
I.A.S.E. Deemed University,
Sardarshahar (Raj.)
Mob. 9414840193
Email : avinash.pareek12@gmail.com

उत्तर-पश्चिम राजस्थान में पागी व्यवस्था

● डॉ. सुखाराम

भूमि पर अंकित पद चिह्नों (an impression of the foot on a surface) की पहचान करने वाले व्यक्ति को पागी के नाम से जाना जाता है।[1] राजस्थानी भाषा में पैर के चिह्न को 'खोज' भी कहा जाता है अतः पैर (पग) से पागी तथा खोज से खोजारा कहा जाता है। अर्थात् पागी को खोजारा के नाम से भी जाना जाता है। पागी को पद चिह्न विशेषज्ञ के रूप में जाना जाता है। राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर के अभिलेखागारीय स्रोतों—**सनद परवाना बहियों, अर्जी बहियों** व **हकीकत बहियों** में पागी के पर्याप्त विवरण मिलते है। राजस्थानी लोक-गीतों में भी पागी को गाया जाता है—*जैसलमेर ती पागीड़ो तेड़ायौ, औ तौ पागलिया पाणी में काडे रे, म्हारो गोरबन्ध चौरांणौ।*[2] अर्थात् गोरबंद[3] की चोरी हो जाने पर ऐसे पागी को बुलाया गया जो पानी में से खोज निकाल ले अर्थात् अंसभव को संभव कर दे और चोरों का पता लगा ले।

रियासत में किसी भी स्थान पर चोरी, लूट या डकैती हो जाने पर मुजरिमों का पता लगाने के कई तरीके थे, उनमें से एक तरीका था कि पागी को बुलाकर खोज निकलवाए[4] जाएं। इस कार्य हेतु रियासत की तरफ से समय-समय पर कई तरह के आदेश जारी किए गए थे। फेरिस्त मजामीन अबवाब मजमूए जाबते फौजदारी राज मारवाड़ बाबत् सन्-1887 में ऐसे कई कानून/आदेश हैं जो पागी और उसकी कार्य प्रणाली के बारे में प्रमाणिक जानकारिया उपलब्ध करवाते हैं। उपर्युक्त कानून की धारा-224 के अनुसार गिरदावर, हाकिम, थानेदार, जागीरदार, भोमिया, ज़मींदार, चौधरी, पटवारी, हवलदार, अमीन, जागीरदारों के कामेती और गांव के मुखियाओं को निर्देशित किया गया कि जब उनको चोरी, धाड़ा, डकैती, गारतगरी (तबाह या बर्बाद करना), राहजनी, चोरी, घर फोड़ा, ताला तोड़ने और सर काबिल जब्र (जबदस्ती लूटमार) की सूचना मिले तो उसके खोज निकालने की तुरंत कार्यवाही करें।[5] कार्यवाही के लिए

 ISSN 2278-4632

संबंधित ओहदेदार स्वयं या उनका कोई अधीनस्थ अधिकारी पागी सहित घटना स्थल पर पहुंचकर खोज निकाले तथा उन खोजों को वे अंतिम जगह तक पहुंचा दें। मौके पर जो खोज हो उनके उपर तथा कहीं कहीं रास्ते में कोई ऐसी चीज से ढक दें ताकि खोज मिटे नहीं। अगर दूसरे गांव की सीमा में इन खोजों को लेकर कोई विवाद या झगड़े की स्थिति हो जाए तो इन सुरक्षित खोजों को सबूत के तौर पर दिखाया जा सके।[6]

खोजों के आधार पर चोरी उजागर करने का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन पागी ही थे। अब सबसे पहले सवाल यह उठता है कि आखिर पागी कैसे खोज निकाल लेते थे? क्या उनको किसी प्रकार का कोई औपचारिक प्रशिक्षण दिया जाता था? इसका उत्तर है नहीं। पागी को सरकार या किसी अन्य संस्था द्वारा कोई प्रशिक्षण नहीं दिया जाता था, बल्कि वह स्वयं अपनी लगन व अभ्यास से सीखते थे।[7] कृषि के साथ पशुपालन अर्थव्यवस्था का एक बहुत बड़ा आधार था। अत: छोटी उम्र से ही बच्चे पशु चराने में अपने परिवार का हाथ बंटाते थे। पहले तो ये लोग अपने-अपने पशुओं के खोजों को पहचानने का अभ्यास करते और धीरे-धीरे वे आदमियों व दूसरे जानवरों के खोजों की पहचान कर लेते तथा उम्र व अनुभव के साथ-साथ उनमें परिपक्वता बढ़ती जाती ओर एक दिन अपने चोरी या खोए हुए पशुओं के खोजों का पीछा करते हुए वे चोरों तक पहुंच जाते थे।[8] एक अच्छा पागी खोज निकाल कर लक्ष्य तक पहुंचा देता था। इसलिए मारवाड़ी में एक कहावत है कि—*रागी, पागी, पारखु, न्याय और नाड़ी बेद। इतरा रां गुरु नहीं हिये तणा उपाय।*[9] पागी एक बार किसी चोर के पद-चिह्न देख लेते तो वर्षों बाद भी उन पद-चिह्नों की आसानी से पहचान कर लेते थे। पागी की पहचान प्राय: गुप्त रखी जाती थी, क्योंकि चोरों व धावड़ियों की ओर से इनकी जान को खतरा रहता था। अत: राज्य की ओर से पागी की जान-माल की सुरक्षा का पूरा आश्वासन दिया जाता था।

अधिकतर पागी अपना कार्य स्वतंत्र रूप से ही करते थे और आवश्यकता होने पर ही रियासत की ओर से उनको बुलावा भेजा जाता वहीं दूसरी ओर अभिलेखागारीय बहियों में थानों व चौकियों में पागीयों की स्थाई नियुक्ति के भी आदेश जारी किए जाने के बहुत से साक्ष्य मिलते हैं। जहां पर थानों में घुड़सवार सैनिकों के साथ पागी को भी नियुक्त किया जाता था।[10] व्यापारियों के माल की चोरी या लूट तथा अन्य लोगों के अपने यहां चोरी के माल की खोज करवाने हेतु निजी स्तर पर भी पागी की सहायता ली जाती थी।[11] एक ही गांव में कई पागी कार्य करते थे, क्योंकि गांव में प्राय: पशुओं के चोरी या खो

जाने पर पागी की मदद से ही उन्हें वापस खोजा जाता था। यदि एक गांव में पागी उपलब्ध नहीं होता तो पड़ोसी गांव या अन्य किसी गांव से पागीयों को बुलाया जाता था।[12]

कानूनन मुद्देई (परिवादी) या उसके किसी आदमी को खोज निकालने वालों के साथ रहना होता था। मौके से खोज रवाना हो और किसी गांव की सीमा में पहुंचे तो उस गांव के मुखिया को बुलाकर वे खोज दिखा दिए जाए तथा गांव के मुखिया के लिए यह आवश्यक था कि वह पागी के साथ होकर अपने गांव की सरहद से खोज निकाल देवे और दूसरे गांव वालों को संभला देवें।[13]

रियासत के आदेशानुसार जब कभी कोई झगड़ा हो जाए या गांव के लोग विरोध करें कि पागी ने जो खोज निकाले हैं वे झूठे हैं या दूसरे है तो ऐसी स्थिति में पिछले या उससे पिछले गांव की सीमा के खोज जिनको ढ़ककर संरक्षित किया गया था, दिखलाए जाएं। इन सबके बाद भी विवाद समाप्त न हो तो पास के गांवों के दूसरे चार पागीयों को बुलाकर उन खोजों की पुष्टि करवाई जाए।[14]

प्रत्येक पागी के लिए यह आवश्यक है कि जिस गांव की सीमा में खोज निकालने जाएं तथा दूसरे गांव वाले उसकी पुष्टि व स्वीकार करने जाएं तो उन गांव वालों से इस आशय की रसीद प्राप्त कर लें कि उनके गांव की अमुक वारदात में अमुक दो आदमियों ने इतने आदमी या ऊंट या घोड़े इत्यादि के खोजों की पुष्टि कर उनको संभला दिए थे, इसलिए हम अमुक-अमुक आदमियों ने शामिल होकर अपने गांव की सीमा से निकाल कर अमुक गांव के अमुक आदमियों को संभला दिए हैं। ऐसी रसीद को प्रमुख सबूत समझा जाएगा।[15]

जब किसी चोरी, घरफोड़ा और ताला तोड़ने के खोज मौके से रवाना न हो या गांव के मुखिया इत्यादि खोज निकाल कर माल और मुजरिम का पता न लगावें तो उस सूरत में मौका-ए-वारदात के गांव के जागीरदार को तीन महीने की मोहलत दी जाए ताकि वह निर्धारित समयावधि में माल और मुजरिम का पता लगावे।[16] यदि इस समयावधि में पता न लगा पाए तो परिवादी को मौका-ए-वारदात से जागीरदार द्वारा उसका अधिकार दिलाया जाए।[17] यदि जागीरदार परिवादी को अधिकार दिलाने में आनाकानी करता, तो उसके यहां **तलब**[18] बिठाकर अधिकार देने के लिए बाध्य किया जाता था।[19] कई बार ऐसा भी होता कि माल तो जागीरदार बरामद करवा लेते लेकिन मुजरिम पकड़ में नहीं आते थे।[20]

जब कोई खोज किसी दूसरी रियासत से अपनी रियासत में आए तथा वे सही न हो तो खोज लेकर आने वालों को स्थिति व घटना मौके पर ही लिखकर समझा दें। फिर भी यदि वे उसी गलत खोज को जारी करना चाहे तो उनको न रोके, बल्कि उनके साथ होकर जहां वे उस खोज को अंतिम स्थान पर निकाले, उनको वहां की तलाशी अच्छी तरह से करवा देंवे। अगर तलाशी में माल व मुजरिम मिल जाए तो वह गांव जिम्मेदार होगा।[21]

हालांकि पद-चिह्नों को पहचानने में पागियों को महारथ हासिल होती थीं, लेकिन कई बार पद-चिह्न साफ न होने या मिट जाने, पथरीली व कठोर जमीन आ जाने, आधी चलने या पानी का बहाव इत्यादि के कारण पागी भी खोज आगे नहीं निकाल पाते थे।[22] ऐसी स्थिति में राज्य द्वारा दूसरा पागी या आसपास के गांव से ऐसे पागी को बुलाने को कहा जाता जो पक्के तौर पर खोज निकाल कर मुजरिम तक पहुंचा दे। कई बार खोज एक राज्य से दूसरे राज्य की सीमा तक चले जाते तो ऐसी देशा में दूसरे राज्य द्वारा कितना सहयोग मिलता यह दोनों राज्यों के संबंधों पर निर्भर करता था। पड़ोसी जागीरदार भी अपने-अपने क्षेत्र के कई चोरों व धावड़ियों को सुरक्षा देते थे। कई बार एक गांव की सीमा से खोज दूसरे गांव की सीमा में चले जाते थे तब दूसरे गांव वालों का पूरा सहयोग नहीं मिल पाता था। ऐसी स्थिति में पागी का काम और मुश्किलों भरा हो जाता था। कई मामलों में एक पागी के निकाले हुए खोजों को दूसरे पागी द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता था तब विवाद की स्थितियां उत्पन्न हो जाती थीं। एक पागी ने एक व्यक्ति को मुजरिम घोषित कर दिया, लेकिन दूसरे पागी ने कहा कि ये खोज इस व्यक्ति के नहीं है। ऐसा होने पर झगड़ा और बढ़ जाता और परिवादी व मुजरिम दोनों ही अदालत में पहुंच जाते थे। जिस मामले में परिवादी की सामाजिक व आर्थिक स्थिति कमजोर होती तो ऐसे मामलों में पागी स्वयं भी खोज निकालने में आनाकानी करते और यदि पागी ने खोज निकाल भी दिए तब भी मुजरिम से माल बरामद करवाना परिवादी के बस की बात नहीं थी। रेतीली व गीली भूमि पर पागी को अपना काम करने में आसानी होती थी क्योंकि ऐसी जमीन पर पद-चिह्न पूरे व स्पष्ट रूप से अंकित नहीं होते थे।[23]

उपर्युक्त सभी कठिनाईयों के बावजूद भी पागी अपना कार्य करते थे। पागी मुजरिम के खोज निकालने के लिए अपने अनुभव के साथ-साथ कई प्रकार की प्रविधियों व तकनीकों का प्रयोग करते थे[24]—

1. अगर किसी खोए हुए पशु के खोज निकालने हो तो उस पशु के मिलने

की संभावना वहां अधिक होगी जिस दिशा की ओर जल व चारे की उपलब्धता हो अथवा पिछले दिनों वहां से पशुओं का कोई बड़ा झुंड निकला हो तो उसके साथ भी जा सकता है।

2. पागी सबसे पहले परिवादी से घटना की पूरी जानकारी लेता और उसके बाद संदिग्ध व्यक्तियों की सूची के साथ उनकी शारीरिक बनावट जैसे लम्बाई-चौड़ाई व वजन इत्यादि की जानकारी लेता था।
3. चोर का कद लम्बा होगा तो उसके दो पद-चिह्नों के बीच की दूरी अधिक तथा पूरा पैर जमीन पर समतल रूप में अंकित होगा। यदि कद छोटा होगा तो उसके दो पैरों के बीच की दूरी कम होगी और उसके पैरों के आगे वाले हिस्से पर अधिक दबाव बनेगा जिससे पैर का अगला हिस्सा गोल मुड़कर जमीन के अंदर धसेगा तथा पद-चिह्नों में घुण्डी (मोड़) बनेगी।
4. मुजरिम का वजन अधिक होगा तो जमीन पर पैरों का दबाव अधिक पड़ेगा और पैर जमीन में धसेंगे तथा वजन कम होने पर पैरों का दबाव कम होगा और समतल पद-चिह्नों का निर्माण होगा। एक अच्छा पागी खोजों के आधार पर मुजरिम के वजन व लम्बाई का ठीक-ठीक अनुमान लगा सकता है।
5. मुजरिम द्वारा अपने पैरों के नीचे कोई वस्तु या आवरण बांध लेने के बावजूद पागी उसकी चाल, पैर रखने की शैली, वजन तथा पैरों के आकार प्रकार से आसानी से सही मुजरिम की पहचान कर सकता है।
6. यदि वारदात के समय मुजरिम को किसी प्रकार की कोई चोट लगी हो तो उसका असर उसकी चाल में आएगा और उसके पैर रखने की शैली बदल जाएगी। शारीरिक चोट भी मुजरिम की पहचान का एक आधार बन जाएगी।

राज्य की ओर से पागियों को उनकी प्रशंसनीय सेवाओं व बड़ी चोरियों को उजागर करने तथा राजकीय आदेशों की पालना करने के बदले राजकीय प्रशस्ति-पत्र, सोने के कड़े, साफा व नकद धनराशि (पागीपौ) इत्यादि से सम्मानित किया जाता था।[26] असूचीबद्ध **सावा बही चूरू** के अनुसार पागी मेणा व धीरा को खोज निकालने के बदले चार महीने व 18 दिन के लिए 13 रुपये और तेरह आने का का भुगतान किया गया तथा दोनों को **पाग** बंधाई। वहीं एक अन्य मामले में पागी मेणा व धीरा को 3 रुपये प्रति माह की दर से पांच महीने व 21 दिन के 34.50 रुपये का भुगतान राजकीय खजाने से करने के

आदेश दिए गए।[27] श्रीडूंगरगढ़ के पागी बावरी भेरीये को 5 रुपये महीने की दर से भुगतान किया गया।[28] वहीं दूसरी तरफ खोजी आसु आहेड़ी, मुंशी रामजीदास के साथ सूरतगढ़ गया जिसे मात्र 2 आने दिए गए।[29] इसके अलावा पागी के लिए रास्ते के लिए खर्चा व भोजन इत्यादि की व्यवस्था राज्य की ओर से की जाती थी। बीकानेर रियासत की ओर से गांवों को इस आशय के आदेश दिए गए कि अमुक व्यक्ति को पागी नियुक्त किया गया है। अत: ब्याह-शादी व मृत्युभोज आदि सामाजिक-धार्मिक अवसर पर पागी को सम्मान स्वरूप **कांसा**[30] दिया जाए।

हालांकि पागी मुस्तैदी से कार्य करते थे लेकिन उनसे भी जाने अनजाने में कुछ गलतियां हो जाती थीं जैसे—

1. गलत खोज निकाल देना।
2. कई मामलों में जागीरदार, मुजरिमों के साथ मिला रहता था। अत: पागी पर दबाव बनाया जाता कि असली मुजरिम के खोज न निकाल कर किसी अन्य व्यक्ति को मुजरिम घोषित कर दिया जाए।
3. कई बार पागी स्वयं मुजरिमों के साथ सांठ-गांठ कर लेता था और कह देता कि खोज मेरी समझ में नहीं आ रहे हैं।

   उपर्युक्त स्थितियों में जब पागी की शिकायत होती तो राज्य की ओर से उसको दण्डित करने के आदेश दिये जाते थे।[31]

चोरी व धाड़े के माल की प्राप्ति के लिए **वाहर**[32] भेजी जाती थी जिसमें सशस्त्र सैनिक दस्ते के साथ पागी को भी भेजा जाता था, जो चोरो व धावड़ियों के पद-चिह्नों की पहचान करते हुए उनका पीछा करके पकड़ लिया जाता था।

गांवों में आज भी कई लोग पागी का कार्य करते है उनमें से कई पागीयों के मैंने साक्षात्कार लिए है। लेकिन आज उनकी भूमिका सीमित हो गयी है। आज पुलिस उन पर भरोसा नहीं करती और केवल गांव में होने वाली छोटी-मोटी चोरियों में ही उनका सहयोग लेती है। राजकीय संरक्षण समाप्त हो जाने व आर्थिक मदद नहीं मिलने से पागीयों का अपने कार्य से मोह भंग हो गया है।[33] अब न तो उतने पशु और न उतनी चोरियां। आजकल की आधुनिक जीवन शैली में चोरियों के तरीके व शैली दोनों बदल गए। इसके अलावा नवयुवकों में पागी के काम के प्रति कोई रुचि नहीं रही, जिसके कारण नए पागी तैयार नहीं हो पा रहे हैं। वारदात के अनुसंधान की आधुनिक विधियों व तकनीकों के आ जाने के कारण पागी की भूमिका अब लगभग समाप्त हो गई है।

इस प्रकार चोरी व लूट आदि की घटनाओं का सही प्रकार से पता लगाकर मुजरिमों को पकड़वाने में पागीयों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती थी। पागी का कार्य बहुत ही चुनौतिपूर्ण था। इसके लिए एक पागी में हौसला, जज्बा, शारीरिक क्षमता व बुद्धिमता का होना आवश्यक था। उसे हर समय चुनौतियों से ही निपटना होता था और हर वारदात व हर स्थान पर परीक्षा से गुजरना होता था। राज्य द्वारा सुरक्षा प्रदान करने के बावजूद भी उसे व उसके परिवार को जीवन का खतरा बना रहता था। इन सभी प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते हुए भी सदियों से पागीयों ने अपने कर्त्तव्यों का निष्ठा के साथ पालन किया।

संदर्भ :

1. **राजस्थांनी सबद कोस**, संपादक, सीताराम लालस, खण्ड-4, प्रकाशक-चौपासनी शिक्षा समिति, चौपासनी, जोधपुर, राजस्थान, पृ. 3249
2. सीताराम लालस, पूर्वोक्त, पृ. 3249
3. ऊंट का एक गहना जो उसके गले में पहनाया जाता है।
4. खोज निकालने का तात्पर्य चोरों का पद-चिह्नों के आधार पर पता लगाना।
5. फेरिस्त मजामीन अबवाब मजमूए जाबते फौजदारी, राज मारवाड़ बाबत् सन्-1887, मारवाड़ स्टेट प्रेस, जोधपुर, पृ. 146-47., सनद परवाना बही सं. 118, जेठ बदी 4, शुक्रवार, वि. सं. 1908/1851, जोधपुर रिकॉर्ड्स. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पत्र 360, सनद परवाना बही सं. 116, कचेड़ी पाली, पोसबद 12, वि. सं. 1906/1849, जोधपुर रिकॉर्ड्स. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पत्र 422.
6. उपर्युक्त, फेरिस्त मजामीन अबवाब मजमूए जाबते फौजदारी, धारा-225, पृ. 148
7. पागी पेमाराम ज्याणी के साथ किया गया साक्षात्कार, गांव केसरदेसर जाटान, बीकानेर, राजस्थान।
8. पागी रघुनाथ राईका के साथ किया गया साक्षात्कार, गांव केसरदेसर बोहरान, बीकानेर, राजस्थान।
9. रागी (संगीतज्ञ), पागी (खोज निकालने वाला खोजारा), पारखु (जौहरी), न्याय (पंच), और नाड़ी बेद (हाथ की धमनी देखकर रोग निदान करने वाला चिकित्सक) इन सभी को गुरु की आवश्यकता नहीं होती बल्कि ये सभी अपनी मेहनत, आंतरिक अभिप्रेरणा और अंतश्चेतना से ही अपनेलक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं।

10. जोधपुर दरबार की ओर से कचेड़ी दौलतपुरा को आदेशित किया गया कि थाने की व्यवस्था के साथ एक खोजी बावरी को रखा जाए। सनद परवाना बही सं. 116, वि. सं. 1906/1849, जोधपुर रिकॉर्ड्स. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पत्र, 383
11. सनद बही सं. 337, गोड़वाड़ री कचेड़ी री बही, वि. सं. 1899/1842, जोधपुर रिकॉर्ड्स, जिला अभिलेखागार, जोधपुर। अर्जी बही सं. 03, वि. सं. 1860-1921/1803-1864, जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पत्र 21 ब.
12. पागी जुंआरा राम मेघवाल के साथ किया गया साक्षात्कार, गांव जानेवा पश्चिम, जिला नागौर, राजस्थान।
13. उपर्युक्त, फेरिस्त मजामीन अबवाब मजमूए जाबते फौजदारी, धारा—227, पृ. 148-49
14. उपर्युक्त, धारा—228, पृ. 149
15. उपर्युक्त, धारा—229, पृ. 150
16. सनद परवाना बही सं. 116, कचेड़ी डीडवाना, सावण बदी 2, शनिवार, वि.सं. 1906/1849, जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पत्र 359.
17. उपर्युक्त, फेरिस्त मजामीन अबवाब मजमूए जाबते फौजदारी, धारा—231, यह हुक्म तारीख 25 नवंबर, सन् 1884 से वजरिये इस्तिहार जारी है, पृ. 151
18. तलब का अर्थ है तलाश या खोज करना। यदि जागीरदार के द्वारा खोज निकालने में राजकीय आदेशों की अवहेलना या अवज्ञा की जाती तब रियासत की ओर से जागीरदारों पर दबाव बनाकर कार्य करवाने के लिए एक सैनिक दस्ता भेजकर उसके घर परबिठा दिया जाता था, जो आगामी आदेश तक वहीं पर बैठा रहता था।
19. सनद परवाना बही सं. 17, सावण सुदी 9, संवत् 1833/1776, कचेड़ी मेड़ता, जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पत्र 56-अ
20. सनद परवाना बही सं. 17, उपर्युक्त, पत्र 54-अ
21. उपर्युक्त, फेरिस्त मजामीन अबवाब मजमूए जाबते फौजदारी, धारा--232, पृ. 152
22. सनद परवाना बही सं. 115, माघ बदी 13, वि. सं. 1905/1848, जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पत्र 387, सनद परवाना बही

सं. 105, माघ बदी 13, वि. सं. 1899/1842, जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पत्र 269

23. पागी चिमाराम राईका, गांव भदाणा, जिला नागौर के साथ किया गया साक्षात्कार।

24. उपर्युक्त पागीयों पेमाराम ज्याणी, रूघनाथ राईका, चिमनाराम राईका, जंवाराराम मेघवाल तथा हनुमान राम देवासी, भदाणा, नागौर, राजस्थान के साथ किए गए साक्षात्कारों के आधार पर उल्लेखित।

25. खोज निकालने के बदले पागी को मिलने वाला पारिश्रमिक।

26. हकीकत बही सं. 18, प्रां. जेठ बद 8, गुरूवार, वि. सं. 1914/1857, जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पत्र 426-27.

27. असूचीबद्ध सावा बही चूरू संवत्-1894/1837, ऑन लाईन, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पत्र 30 व 64

28. असूचीबद्ध सावा बही, श्रीडूंगरगढ़, संवत 1942/1885, ऑनलाईन, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 63

29. असूचीबद्ध सावा बही अनूपगढ़, संवत 1925/1868, ऑनलाईन, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पत्र 50

30. किसी भोज के अवसर पर आमंत्रित व्यक्ति के न आने पर उसके घर पर कांसे के बर्तन में परोस कर भोजन भिजवाया जाता था जो कांसा कहलाता था। डॉ. शिव रतन नायक ने जैसा बताया। लेकिन इस मामले में पागी को खाना देने की बाध्यता थी।

31. उपर्युक्त पागीयों के साक्षात्कार के आधार पर उल्लेखित।

32. वाहर का अर्थ सैनिक अभियान से है। इस शब्द का प्रयोग जोधपुर व बीकानेर अभिलेखागार की सनद परवाना, सावा बहियों व हकीकत बहियों में बहुतायत से हुआ है। राजस्थान के इतिहास में लोक देवता तेजाजी, पाबूजी व गोगाजी आदि का गायों को चोरों व डकैतों से छुड़ाकर वापस लाने के लिए वाहर चढ़ने और अपने प्राणों के उत्सर्ग करने के उदाहरण मिलते हैं। किसी भी स्थान पर चोरी, डकैती या लूट आदि की कोई घटना होती थी तब राज्य की ओर से चोरों व धावड़ियों का पीछा कर माल वापस प्राप्त करने के लिए एक सैनिक दस्ता भेजा जाता था। इस दस्ते में सशस्त्र ऊंट या घुड़सवार सैनिकों के साथ एक पागी भी होता था जो चोरों मुजरिमों के खोज निकाल कर उनका पीछा करते और एक स्थान पर उनको माल सहित पकड़ लिया जाता था। यदि चोर व डकैत कमजोर व संख्या में कम होते तो माल छोड़कर भाग जाते थे और अगर उनकी शक्ति व संख्या बल अधिक होता तो वे सैनिक दस्ते के साथ लड़ाई करते तथा जिंसकी जीत होती माल उसको प्राप्त हो

जाता था। हकीकत बही सं. 18, प्रां. जेठ बद 8, गुरुवार, वि. सं. 1914/1857, जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पत्र 426-27., असूचीबद्ध सावा बही चूरू संवत्-1894/1837, ऑन लाईन, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, सावा बही चूरू, पत्र 23

33. अब तो केवल परिवादी के द्वारा ही पागी को ले जाया जाता है तथा उसी के द्वारा ही पारिश्रमिक दिया जाता है।

❑

Dr. Sukha Ram
Assistant Professor,
Department of History,
Govt. Dungar College,
Bikaner (Raj.)
Mob. 9828953486
Email : sukharambanahdj@gmail.com

मारवाड़ रियासत की मिर्धा डाक

● डॉ. उषा लामरोर

संचार के बिना मानव जीवन की कल्पना ही असंभव है। सूचनाओं की प्राप्ति तथा प्रेषण एक स्वाभाविक मानवीय व संगठनात्मक आवश्यकता है। मानवीय विचारों और सम्मतियों का शब्दों, पत्रों व संदेशों के माध्यम से आदान प्रदान ही संचार है। प्राचीन काल में संचार का कार्य संदेश वाहक दूतों व हरकारों के माध्यम से किया जाता था जो विश्वासपात्र व तीव्रगामी होते थे। कौटिल्य ने एक योजन से सौ योजन तक संदेश ले जाने वाले धावकों का वर्णन किया है जिन्हें दस योजन की दूरी तक प्रति योजन एक 'पण' दिया जाता तथा उसके बाद प्रति दस योजन की दूरी के लिए वेतन दुगुना होता जाता था।[1] रामायण में राजा जनक के दूतों द्वारा संदेश जनकपुर से अयोध्या तीन दिन में पहुंचने का वर्णन है[2] तो बाणभट्ट की हर्षचरित में भी तीव्रगामी सांडनी[3] सवारों को संदेश देकर भेजने के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[4]

मध्यकाल में खिलजी सुल्तानों द्वारा डाक चौकियां स्थापित करने और हरकारों के माध्यम से डाक पहुंचाने का वर्णन जियाउद्दीन बरनी ने तारीख-ए-फिरोजशाही में किया है।[5] तुगलक काल में भारत आए इब्नबतूता ने तो तत्कालीन डाक व्यवस्था के बारे में विस्तृत विवरण दिया है।[6] बाबरनामा के अनुसार बाबर ने आगरा व काबुल के बीच संपर्क रखने के लिए डाक चौकियों की स्थापना कर उनमें 6-6 घोड़े रखने की व्यवस्था की थी।[7] शेरशाह सूरी ने मार्गों पर सरायें बनाकर प्रत्येक सराय में दो-दो घोड़े रखने की व्यवस्था की ताकि शीघ्रता से संदेश पहुंचाए जा सके।[8] शेरशाह के समय में राजकीय डाक राजस्थान में बिठाई गई थी।[9] अकबर के शासनकाल में पूरे मुगल साम्राज्य में प्रत्येक 5 कुरोह[10] पर एक-एक डाक चौकी स्थापित की गई, जिस पर दो घुड़सवार नियुक्त थे। मेवात के मेवों, को जो अपनी तीव्रगति के लिए प्रसिद्ध थे, 'प्यादा'[11] के रूप में नियुक्त किया गया। साम्राज्य मे एक डाक अधीक्षक को नियुक्त किया जिसे *'दरोगा-ए-डाक-ए-कुल मुमालिक-ए-मेहरूसा'* कहा जाता था।[12]

राजपूताना की रियासतों में भी अपनी-अपनी देशी डाक व्यवस्थाएं थीं। राजपूताना की सबसे बड़ी रियासत मारवाड़ में कई डाक व्यवस्थाएं कार्यरत थीं, जिनमें मीरदा डाक, उदयपुर की ब्राह्मणी डाक, बीकानेर की चिलका डाक व व्यापारियों की महाजनी डाक आदि प्रमुख थीं। मीरदा डाक के बारे में महाराजा जसवंतसिंह के शासनकाल में उनके मुसाहिबआला मुंशी हरदयालसिंह ने डाक व्यवस्था पर एक रिपोर्ट ''मुजमूई हालात व इन्तिजाम राज मारवाड़ सन्- 1883-84'' प्रस्तुत की थी।

मारवाड़ में पुराना नियम था कि दलित वर्ग के व्यक्तियों को डाक कार्य करने के बदले प्रत्येक गांव मे थोड़ी-2 जमीन दी जाती थी। गांव के किसी हवलदार को शहर या अन्य स्थान पर संदेश भेजना होता तो *'सरगरा'*[13] जाति के व्यक्ति संदेश लाने व ले जाने का कार्य करते थे। आमजन के लिए कासिद जाया करते थे, जिनको 20 कोस का एक रूपया दिया जाता था। अति आवश्यक संदेश भेजने के लिए 'ओठी' (सांडनी सवार) भेजे जाते थे।[14]

मुगल काल में डाक चौकियों को स्थापित किया गया तथा घोड़ों पर डाक आया-जाया करती थी। ये घोड़े प्राय: जागीरदारों के होते थे। गुजरात सूबे की डाक मारवाड़ से होकर ही बादशाह के पास पहुंचती थी, जिसकी 10-12 चौकियां मेड़ता, जोधपुर, सोजत व गोड़वाड़ के परगनों में स्थापित थीं। लगभग 20-20 कोस की दूरी पर स्थापित इन डाक चौकियों का सरकारी मुखिया 'मीरदा'[15] कहलाता था। मीरदे बहुत से कासिदों[16] को साथ लेकर राजा-महाराजा के साथ तीर्थ-यात्रा, राजकीय दौरा और बादशाही कार्यों पर जाते तथा वहां से जोधपुर को सूचनाएं पहुंचाते रहते थे। उसी प्रकार जब अंग्रेजी रेजीडेंट दौरे पर आते थे तो सरकारी आदेश मिलने पर मीरदे साथ जाकर कासिदों की डाक बिठा देते, जिसके माध्यम से ही चिट्ठी-पत्री आया जाया करती थीं।[17] इस डाक में पांच-पांच कोस की दूरी पर दो-दो कासिद बिठाये जाते थे जो दिन-रात में 40 कोस की दूरी तक संदेश भेज सकते थे। जब तक डाक बैठी रहती तब तक इन कासिदों को 5 रूपये प्रतिमाह वेतन दिया जाता था।[18]

मिर्धा डाक के बारे में प्रथम उल्लेख मोटा राजा उदयसिंह के शासनकाल में मिलता है। सन् 1584 ई. में अकबर के आदेश पर महाराजा उदयसिंह ने गुजरात के सुल्तान मुज्जफरशाह के विरुद्ध अभियान किया और विजय प्राप्त की, जिसकी सूचना लेकर मारवाड़ में एक मिर्धा आया, तो उसे राज्य के अधिकारियों की ओर से एक जोड़ी तुगलकी[19] दी गई।[20]

मुगलों के मनसबदार होने के कारण जोधपुर के शासकों की तैनाती प्राय: आगरा, दिल्ली, लाहौर, काबुल, अजमेर, अहमदाबाद और बुरहानपुर आदि

स्थानों पर होती थीं और वहां की डाक भी मीरदे[21] इस प्रकार से पहुंचाया करते थे—लाहौर से बीकानेर होकर जोधपुर 6 दिन में, लाहौर से दिल्ली होकर 8 दिन में, पेशावर से 10 दिन में, काबुल से 15 दिन में, अहमदाबाद से 5 दिन में, बुरहानपुर से 8 दिन में, और दिल्ली से 6 दिन में डाक पहुंचायी जाती थीं।[22]

नागौर के महाराजा बख्तसिंह ने मिरदों को नागौर का कुचेरा गांव ईनाम में दिया गया और जब बख्तसिंह जोधपुर के शासक बने तब प्रधान डाक प्रशासक मंगल राम मिर्धा को 500 रुपये प्रति वर्ष राजस्व का सिलास गांव चाकरी में दिया था। जालौर के घेरे के समय की उल्लेखनीय सेवाओं के लिए महाराजा मानसिंह ने शिवजी मिर्धा के दादा को 500 रुपये प्रतिवर्ष राजस्व का गांव ढूढ़ीवास व भाखरोद ईनाम में दिया था। इन दोनों मिर्धा परिवारों के डेरे जोधपुर शहर में थे जहां पर 5 से 15 कासिद हमेशा तैयार रहते थे जो राज्य के काम या शहर में किसी अन्य को आवश्यकता हो तो कासिदी पर भेजे जाते थे। ये कासिद दिन भर में 15 कोस तथा शर्त लगाकर रात दिन में 40 कोस चल सकते थे। मंगल राम मिर्धा के डेरे में हरका[23] नाम का कासिद था। जो रात दिन में 50 कोस तथा शर्त लगाकर 70 कोस तक भी जा सकता था। जयुपर व बूंदी की सौ-सौ कोस तो वह दो दिन में कई बार चला गया। हरका ने जोधपुर से जामनगर की 250 कोस की दूरी पांच दिन में पूरी की और **ओठी** सवार को भी पीछे छोड़ दिया था।[24]

संदेश वाहक कासिदों की अलग पहचान होती थी। मार्ग में कोई उन्हें परेशान न करे इसलिए अपने सिर पर एक पंख तथा कमरबंध पर दो घंटियां लगा लेते थे। लगातार चलते रहने के कारण ये घंटियां बजती रहती थी, जिसके कारण कोई व्यक्ति पास आकर उनके कार्य में व्यवधान नहीं पहुंचाता था। निरन्तर काम करने व थकान से बचने के लिए ये कासिद *'पोस्तीभंग'*[25] का बहुत सेवन करते थे। रास्ते में ही किसी पेड़ या तालाब के किनारे एक या दो घंटे का विश्राम करते थे। खाने में शक्करपारे, कसार व परांठे अपने साथ लेकर चलते थे और खाने के बाद 'चिलम'[26] पीते थे।[27]

आज की तरह पहले डाक का स्थायी बंदोबस्त नहीं था। आवश्यकता होने पर डाक बैठा दी जाती थी तथा काम हो जाने के पश्चात् उसे वापस उठा लिया जाता था। सन् 1834 ई. में अंग्रेजों ने परगना मालानी का प्रशासन अपने हाथों में लिया था तब बाड़मेर से जोधपुर होते हुए अजमेर तक घोड़ों की डाक को स्थायी रूप से बिठाया गया था।[28] 1839 ई. में जोधपुर में जब ब्रिटिश रीजेन्सी स्थापित हो जाने से अंग्रेजी डाकखाना खुल गया तब यह डाक केवल जोधपुर तक ही रह

गई और अजमेर के कागजात अंग्रेजी डाक में रवाना हो जाते थे। कुछ समय बाद जब मालानी का परगना जोधपुर के एजेंट को दे दिया गया तब मिर्धा अपनी डाक बैठाकर कागजात एजेंट साहब के पास पहुंचा देते थे।[29] अंग्रेजी डाक की व्यवस्था के लिए राज्य की ओर से हाकिमों को आदेश जारी कर विशेष प्रबंध किए जाते थे।[30] इस हेतु जागीरदारों की ओर से प्रत्येक चौकी पर दो-दो घुड़सवारों की तैनाती की जाती थी।[31] घोड़ों की डाक पर राज्य का बहुत अधिक खर्चा आता था, इसलिए सन 1865 ई. में घोड़ों के स्थान पर प्यादे कासिदों की डाक बैठाना तय किया गया। जोधपुर से मालानी व बाड़मेर का ठेका मिरदा मंगला को 155 रुपये प्रतिमाह के हिसाब से दिया गया। तदुपरांत यह डाक मारवाड़ के दूसरे परगनों--पंचपदरा, जालौर, सांचौर, भीनमाल, शिव, शेरगढ़, सीवाना व जसवंतपुरा तक बढ़ती गई। यह डाक सुबह 10.00 बजे जोधपुर से रवाना होकर रात 10.00 बजे समदड़ी गांव पहुंचती थी।[32] वहां से उसकी तीन शाखाएं हो जाती थीं। पहली शाखा पंचपदरा को, दूसरी जालौर को और तीसरी सीवाना को जाती थी। पंचपदरा व जालौर की डाक तो प्रतिदिन तथा सीवाना की डाक एक दिन छोड़कर जाती थीं।[33]

मिर्धा डाक के जोधपुर में आने-जाने की दूरी व समय

क्र. सं.	डाक का नाम	डाक की दूरी कोस में	जोधपुर की दूरी कोस में	समयावधि	
				प्रहर	घण्टे
1.	पंचपदरा	31.5	28.5	8	24
2.	बाड़मेर	31	59.5	16	48
3.	शिव	16	96...	20	60
4.	सेरगढ	12	40.5	10	30
5.	सीवाना	14	28.5	8	24
6.	जालोर	16	37.5	12	36
7.	भीनमाल	16	53.5	16	48
8.	जसवंतपुरा	12	65.5	20	60
9.	सांचौर	21	77.5	24	72
	कुल	**169.5**	**487**	**134**	**402**

गुप्त संदेशों को भेजते समय उनके कागज को लपेटकर उनके दोनों सिरों को मिला देते थे और सिरों पर कागज का बंद देकर उस पर लाख की एक मुहर लगा दी जाती थी ताकि संदेश को बदला और पढ़ा न जा सके। इन मुहरबंद पत्रों को थैलों में बंद करके कासिदों के माध्यम से पहुंचाए जाते थे। आवश्यक राजकीय पत्रों को बांस के थोथे डंडों में बंद करके भेजा जाता था। मारवाड़ में कासिदों के लिए डाक के पत्र भेजने के लिए मेंणीया की दोहरी परत वाली थैलियों का प्रयोग किया जाता था।

मिर्धा डाक में सरकारी कागजों का **महसूल** नहीं लिया जाता था। आमजन के लिए एक पत्र का एक पैसा और रजिस्टर्ड पत्र, जिसका वजन कितना भी हो, का दो आना शुल्क लिया जाता था। पार्सल की भी सुविधा थी, जिसका **महसूल** एक रूपया प्रति सेर लिया जाता था। एक माह में लगभग 4000 साधारण पत्र, रजिस्टर्ड पत्र 10 और इतने ही पार्सल हो जाते थे। डाक के इस ठेके के बदले मिर्धा को 50 रूपये प्रतिमाह राजकीय कर चुकाना पड़ता था। मिर्धा डाक को विभिन्न ठेकों से इस प्रकार आय होती थी—

155) रुपये जोधपुर से बाड़मेर, जो पंचपदरा होकर जाती थी।
10) रुपये पंचपदरा और शेरगढ़ के।
18) रुपये बाड़मेर व शिव के।
100) रुपये पंचपदरा, सीवाना, जालोर, सांचोर व जसवंतपुरा के।
5) रुपये पंचपदरा में नमक के अंग्रेजी अधिकारी के पास तैनात एक हलकारे का वेतन।
7.50) रुपये मालानी मुंसिफ के पास तैनात एक हलकारे का वेतन।
294.50) रुपये कुल सकल आय।
-50) रुपये राजकीय कर के राजकोष में जमा।
245.50) रुपये शुद्ध लाभ।

उपर्युक्त धन राशि मंगला मिर्धा को इस प्रकार से चुकायी जाती थी-

212.50) रुपये खास खजाने से।
5) रुपये हुकुमत पंचपदरा से।
10) रुपये हुकुमत शेरगढ़ से।
18) रुपये हुकुमत शिव से।
245.50) रुपये कुल।

मिर्धा डाक की चौकियां, हरकारे, जमादार व उनके वेतन[39]

1. डाक पंचपदरा

चौकी का नाम	दूरी कोस में	हरकारों की संख्या	वेतन रुपये में	मुकामी पोस्ट मास्टर की संख्या	वेतन	जमादारों की संख्या	वेतन
1. जोधपुर	0	2	10	0	0	0	0
2. बोड़ानड़ो	4	2	10	0	0	0	0
3. खादा बास	5	2	10	0	0	0	0
4. डोली	5	2	10	0	0	0	0
5. सरवड़ी	6	2	10	0	0	0	0
6. बड़ाऊ	3	2	10	0	0	0	0
7. पचपदरा	5	5	25	0	0	0	0
8. नमक	3	1	5	0	0	0	0
कुल	**31**	**18**	**90**	**0**	**0**	**0**	**0**

2. मिर्धा डाक बाड़मेर

1. पंचपदरा	0	0	0	0	0	0	0
2. जसोल	4	2	10	0	0	0	0
3. सिणली	6	2	10	0	0	0	0
4. नोसर	5	2	10	0	0	0	0
5. सेवणवाला	3	2	10	0	0	0	0
6. रावतसर	5	2	10	0	0	0	0
7. सिवकर	4	2	10	0	0	0	0
8. बाड़मेर	4	2	10	1	10	0	15
9. कुल	**31**	**14**	**70**	**1**	**10**	**0**	**15**

3. मिर्धा डाक शिव

चौकी का नाम	दूरी कोस में	हरकारों की संख्या	वेतन रुपये में	मुकामी पोस्ट मास्टर की संख्या	वेतन	जमादारों की संख्या	वेतन
1. बाड़मेर	0	0	0	0	0	0	0
2. कसरड़ा	5	1	5	0	0	0	0
3. नवलकोट	5.5	1	5	0	0	0	0
4. शिव	5.5	1	5	0	3	0	0
5. कुल	**16**	**3**	**15**	**0**	**3**	**0**	**0**

4. मिर्धा डाक सीवाना

1. डोली	0	0	0	0	0	0	0
2. समदड़ी	7	2	10	1	5	0	0
3. सीवाना	7	1	5	1	0	0	0
4. कुल	**14**	**3**	**15**	**2**	**5**	**0**	**0**

5. मिर्धा डाक जालोर

1. समदड़ी	0	0	0	0	0	0	0
2. रायथल	5	2	10	0	0	0	0
3. मोडी	5.5	2	10	0	0	0	0
4. जालोर	5.5	0	0	0	0	0	0
5. कुल	**16**	**4**	**20**	**0**	**0**	**0**	**0**

6. मिर्धा डाक भीनमाल

1. जालोर	0	0	0	0	0	0	0
2. मोदरा	8	4	20	0	0	0	0
3. भीनमाल	8	0	0	1	0	0	0
4. कुल	**16**	**4**	**20**	**1**	**0**	**0**	**0**

7. मिर्धा डाक सांचोर

चौकी का नाम	दूरी कोस में	हरकारों की संख्या	वेतन रुपये में	मुकामी पोस्ट मास्टर की संख्या	वेतन	जमादारों की संख्या	वेतन
1. भीनमाल	0	0	0	0	0	0	0
2. दातीवा	8	2	10	0	0	0	0
3. लालड़ी	8	1	5	0	0	0	0
4. सांचोर	8	0	0	0	0	1	0
5. कुल	**24**	**3**	**15**	**0**	**0**	**1**	**0**

8. मिर्धा डाक जसवंतपुरा

1. भीनमाल	0	0	0	0	0	0	0
2. राजोरी वास	4	2	10	0	0	0	0
3. पहाड़पुरा	4	2	10	0	0	0	0
4. जसवंतपुरा	4	0	0	0	0	0	0
5. कुल	12	4	20	0	0	0	0

9. मिर्धा डाक शेरगढ़

1. पंचपदरा	0	0	0	0	0	0	0
2. शेरगढ	12	2	10	0	0	0	0
3. कुल	12	2	10	0	0	0	0

सन् 1839 ई. में जोधपुर में ब्रिटिश एजेन्सी स्थापित होने के पश्चात् वहां पर इम्पीरियल पोस्ट ऑफिस की स्थापना हुई जिससे यहां डाक का आधुनिकीकरण प्रारम्भ हो गया। राजपूताना एजेन्सी का स्थानांतरण अजमेर से माउण्ट आबू होने के बाद जोधपुर राज्य में बर, सोजत, पाली व एरनपुरा में भी

ब्रिटिश डाकखानों की स्थापना हो गई तथा इन डाकखानों को जोधपुर से जोड़ा गया। इसके बाद 1884 ई. में जोधपुर भी ब्रिटिश पोस्टल व्यवस्था में सम्मिलित हो गया। जिसके कारण राज्य की ओर से सभी विभागों को निर्देशित किया गया कि अब बाईस परगनों के सभी कागजात व पत्र डाक के नये विभाग के माध्यम से भिजवाए जाए। अब ब्रिटिश पोस्टल व्यवस्था निरंतर बढ़ती गई तथा देशज मिर्धा डाक व्यवस्था धीरे-धीरे समाप्त होने लगी। अंततः ब्रिटिश रेल, तार व पोस्टल व्यवस्था ने मिलकर मारवाड़ की मिर्धा डाक के साथ-साथ सभी परम्परागत देशज डाक व्यवस्थाओं को समाप्त कर दिया।

संदर्भ :

1. अग्रवाल, वासुदेव शरण, **पाणिनी कालीन** भारतवर्ष, पृ. 403
2. वाल्मीकि **रामायण**, अयोध्या काण्ड, सर्ग-68
3. मादा ऊंट
4. अग्रवाल, वासुदेव शरण, **हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन**, पृ. 95
5. सैयद अतहर अब्बास रिजवी, **खिलजीकालीन भारत**, पृ. 91-94
6. सैयद अतहर अब्बास रिजवी, **तुगलककालीन भारत**, भाग-1, पृ. 157-58
7. ठाकुर, केशव कुमार, **बाबरनामा**, पृ. 459
8. निगम, एस.बी.पी., **सूरवंश का इतिहास**, पृ. 226
9. **राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स**, जोधपुर, पृ. 245
10. अकबर व जहांगीर के शासनकाल में **कुरोह (कोस)** की लम्बाई लगभग 2.25 मील थी जो शाहजहां के समय में बढ़कर लगभग 2.75 मील हो गई। इरफान हबीब, **एटलस ऑफ द मुगल एम्पायर**, दिल्ली, 1982, पृ. xiii b
11. द्रुतगामी धावक
12. इरफान हबीब, आर्टिकल ऑन पोस्टल कम्युनिकेशन इन मुगल इंडिया, इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, वॉल्युम-46 (1985), पृ. 236-37
13. सरगरा संदेश लाने-ले जाने का काम करते थे। इनके अलावा मेघवाल, सांसी, साटिया आदि जातियों के लोग भी ये कार्य करते थे। आज भी गांवों में जब किसी सामूहिक कार्य की सूचना देनी होती है तो गांव 'भांबी' द्वारा 'हेला मरवाया' या 'हेला पड़वाया' जाता है।
14. मुंशीहरदयालसिंह, **मुज्मुई हालात व इन्तिजाम राज मारवाड़**, रिपोर्ट, भाग-2, सन्-1883-84, धारा-233, पृ. 606
15. यह फारसी का शब्द है जिसका अर्थ है—गांव का मुखिया या प्रधान। डाक के

सम्बन्ध में इरफान हबीब ने अपने उपर्युक्त लेख में मीरदा को head runner कहा है। मीरदा का ही अपभ्रंस होकर आज का शब्द 'मिर्धा' बन गया। 'राड़' गोत्र के जाट, जो डाक का कार्य करते थे, जोधपुर महाराजा ने उन्हें यह उपाधि प्रदान की थी।

16. पैदल संदेशवाहक।
17. सनद परवाना बही सं. 126, वि. सं. 1914/1857, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, जोधपुर रिकॉर्ड्स, कचेड़ी पाली, पृ. 461
18. मुंशी हरदयालसिंह, पूर्वोक्त, धारा-234, पृ. 607
19. तुगलकी सोने का एक मुगल आभूषण था जिसे कानों में पहना जाता था।
20. मुंशी हरदयालसिंह, पूर्वोक्त, धारा-235, पृ. 608
21. डाक का अधिकारी मिर्धा कहलाता था। शर्मा, गोपीनाथ, सोशियल एंड इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ राजस्थान, पृ. 330-31
22. मुंशी हरदयालसिंह, पूर्वोक्त, धारा-236, पृ. 608
23. हरका कासिद नागौर के गांव दांतीणे का रहने वाला था, जिसे जोधपुर महाराजा तख्तसिंह ने तेज चलने के कारण घोड़ा कासिद का खिताब दिया था। बाद में अंधा हो जाने के कारण हरका ने कासिदी का कार्य छोड़ दिया था।
24. मुंशी हरदयालसिंह, पूर्वोक्त, धारा-237-38, पृ. 608-09
25. पोस्त (अफीम) व भांग।
26. धुम्रपान हेतु मिट्टी का एक छोटा हुक्का जिसे साथ लेकर चला जाता था।
27. फ्रांसिस्को, पेर्ल्सट, **रिमोन्सट्रेंटिक**, अनुदित, डब्ल्यू. एच. मौरलैण्ड एण्ड पी. गेल, जहांगीर्स इण्डिया, केम्ब्रिज, 1925. पृ. 62
28. शाह, पी. आर., **राज मारवाड़ ड्यूरिंग ब्रिटिश पेरामाउन्ट्सी**, पृ. 137
29. जहां कहीं भी अंग्रेजी डाक आती-जाती या कोई ब्रिटिश अधिकारी राज्य के दौरे पर आते तो उन्हें सही तरीके से सही स्थान पर पूरे जाबते के साथ पहुंचाने के आदेश राज्य की कचेड़ियों की ओर से मीरदों को दिए जाते थे। **सनद परवाना बही** सं. 126, वि. सं. 1914/1857, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, जोधपुर रिकॉर्ड्स, कचेड़ी पाली, पृ. 461, सनद परवाना बही सं. 145, वि. सं. 1935/1875, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, जोधपुर रिकॉर्ड्स, कचेड़ी जालोर, पृ. 210.अ.।
30. कचेड़ी पंचपदरा की ओर से हाकिम द्वारा अंग्रेजी डाक के प्रबन्ध में कमी व गलत व्यवहार के कारण दंडित किया और एक महीने की वेतन कटौती रुपये 100) खास खजाने में जमा कराने व आगे से अच्छे आचरण व प्रबन्ध हेतु निर्देशित

किया गया। **सनद परवाना बही**,सं.126, वि. सं. 1914/1857, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, जोधपुर रिकॉर्ड्स, पृ. 512

31. **सनद परवाना बही**, सं. 126, वि. सं. 1932/1875, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, जोधपुर रिकॉर्ड्स, कचेड़ी डीडवाना, पृ. 301 अ.
32. कम दूरी की डाक 8 प्रहर (24 घंटे) तथा दूर की डाक पहुंचने में 24 प्रहर (72घंटे) का समय लगता था।
33. मुंशी हरदयालसिंह, पूर्वोक्त, धारा-239, पृ. 611
34. मुंशी हरदयालसिंह, पूर्वोक्त, धारा-244, पृ. 614
35. गोविन्द अग्रवाल, उन्नीसवीं सदी में संचार व्यवस्था, मरूश्री, संयुक्तांक, जुलाई-दिसम्बर, 1985, पृ. 08
36. 'मेंणीया' जिसे **तिरपाल** भी कहा जाता है। यह एक मोटा कपड़ा होता था जिसे मोम पीलाकर जलरोधी बनाया जाता था।
37. **सनद परवाना बही,** सं. 137, वि. सं. 1925/1868, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, जोधपुर रिकॉर्ड्स, कचेड़ी डीडवाना, पृ. 37 ब.
38. मुंशी हरदयालसिंह, पूर्वोक्त, धारा-244, पृ. 613
39. मुंशी हरदयालसिंह, पूर्वोक्त, धारा-244, पृ. 614-16
40. राजपूताना डाक का चीफ इन्सपेक्टर मिस्टर मीलर को बनाया गया था। **सनद परवाना बही** सं. 145, वि. सं. 1935/1875, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, जोधपुर रिकॉर्ड्स, पृ. 210 अ।
41. ओहदा बही सं. 05, वि.सं. 1939-67, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, जोधपुर रिकॉर्ड्स, पृ. 85 ब.
42. **मारवाड़ प्रशासनिक रिपोर्ट**-1907-08, पृ. 38, शाह, पी. आर., पूर्वोक्त, पृ. 137

❑

Dr. Usha Lamror
Assistant Professor,
Department of History,
Govt. Dungar College,
Bikaner (Raj.)
Mob. 9828953486

21वीं शताब्दी के हिन्दी निबंधों में धर्म और नीति

● मनप्रीत सिंह संधू

धर्म का अर्थ होता है, धारण, अर्थात जिसे धारण किया जा सके, धर्म, कर्म प्रधान है। गुणों को जो प्रदर्शित करे वह धर्म है। धर्म को गुण भी कह सकते हैं। धर्म शब्द में गुण अर्थ केवल मानव से संबंधित नहीं। पदार्थ के लिए भी धर्म शब्द प्रयुक्त होता है यथा जल का धर्म है बहना, अग्नि का धर्म है प्रकाश, ऊष्मा देना और संपर्क में आने वाली वस्तु को जलाना। प्रत्येक व्यक्ति के लिए धर्म का पालन करना आवश्यक माना गया है। इसी धर्म के बल पर ही मानव में आत्मविश्वास एवं आत्मशुद्धि का भाव जागृत होता है। धर्म सार्वभौमिक होता है। धर्म सार्वकालिक होता है अर्थात् प्रत्येक काल के युग में धर्म का स्वरूप वही रहता है। धर्म कभी बदलता नहीं है।

समस्या कथन

'21वीं शताब्दी के हिन्दी निबंधों में धर्म और नीति' हमारे इस शोध पत्र का समस्या कथन है। निबंधकारों ने अपने समय की स्थितियों को अपनी लेखनी में व्यक्त किया है और वर्तमान की समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए यह बहुत बड़ा उपादान है। साहित्य से हमें बहुत ज्ञान प्राप्त होता है जिससे हम अपने समाज में एक अच्छे जीवन का निर्माण करते हैं और यह सफल भी होता है, क्योंकि हम ज्ञान साहित्य से प्राप्त करते हैं।

उद्देश्य

कोई भी कार्य करने के लिए हमारा एक उद्देश्य होता है। इस शोध पत्र में भी हमारे कुछ उद्देश्य हैं जिनको आधार बनाकर एक सफल कार्य किया जा रहा है जो हमारे सामाजिक विकास के लिए उपयोग किया जा सकता है। इस शोध पत्र के उद्देश्य निम्न हैं—

- वर्तमान समय में हिन्दी निबंधकारों द्वारा धर्म और नीति के पक्ष में किए गये प्रयासों की पहचान करना।
- धर्म और नीति से सम्बद्ध निबंधों में आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक स्थितियों के प्रभावों का मूल्याँकन करना।

धर्मनिरपेक्षता का शाब्दिक अर्थ है धर्म से निरपेक्ष रहना अर्थात धर्म के मामले में कोई हस्तक्षेप न करना व्यक्ति या समुदाय की जो आस्था या धर्म हो उसे बिना बाध्यता के उसके अनुसार आचरण करने की छूट प्रदान करना ही धर्मनिरपेक्षता है। भारतीय धर्मनिरपेक्षता अर्थात् सभी धर्मों को आदर व सम्मान देना भारतीय संस्कृति का प्राचीन काल से ही विशिष्ट लक्ष्ण रहा है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है, यहाँ सभी नागरिकों को स्वतंत्र रूप से धर्म को मानने व उसके अनुसार आचरण करने की स्वतंत्रता है। धर्मनिरपेक्षता भारतीय संविधान के आधारभूत ढांचे में सम्मिलित है।

हमारे संविधान में धर्मनिरपेक्षता को आदर्श के रूप में रखा गया है, इससे यह आशय है कि कोई भी राज्य धर्म के नाम पर धर्म विशेष को राज्य के धर्म के रूप में घोषित नहीं करेगा, किसी भी नागरिक के साथ धार्मिक आधार पर कोई भेद-भाव नहीं किया जायेगा। धर्म निरपेक्ष का यह मतलब कदापि नहीं है कि :

- धर्म की बात नहीं करनी है।
- धर्म का पक्ष नहीं लेना है।
- धर्म के पालन की आज्ञा नहीं करनी है।
- राज्य/सरकार को धर्म से अलग रहना होगा।

धर्मनिरपेक्षता का सीधा-सादा अर्थ सिर्फ इतना है, किसी भी धर्म का पक्ष नहीं लिया जाएगा। जब इंदिरा गांधी ने संविधान में बदलाव करते हुए देश को धर्मनिरपेक्ष बनाया था, तो उनका मतलब था, कि भारत सरकार किसी भी धर्म विशेष का पक्ष नहीं लेगी। सभी नागरिक सरकार के लिए समान रहेंगे। एक समय ऐसा था जब हमारे देश में धर्म के नाम पर लड़ाई-झगड़ा होता था सभी लोग अपने-अपने धर्मो को लेकर लड़ते थे और अपना-अपना प्रचार करते थे। ऐसी ही बहुत समस्याएँ प्राचीन समय में देखी गई है जिनको लेकर हिन्दी निबंधकारों ने भी अपने निबंधों में धर्म के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं। उसके बाद हमारे संविधान में इस बात को स्पष्ट रूप से लागू कर दिया गया कि कोई भी राज्य धर्म के नाम पर भेद-भाव नहीं करेगा।

आस्तिक और नास्तिक सामान्यतः आस्तिकता ईश्वरवाद का पर्याय है और नास्तिकता अनीश्वरवाद का। ईश्वरवाद से धर्म का उदय हुआ है और अनीश्वरवाद से विज्ञान का। पर ऐसे भी विचारक हैं जो धर्म एवं विज्ञान में कोई विरोध नहीं देखते परन्तु धर्म का मूल तत्व ईश्वर में विशवास एवं आस्था है और विज्ञान का प्रस्थान बिन्दु है। भौतिक जगत का निरीक्षण उसके रहस्यों की खोज करना और उनकी तर्कसंगत व्याख्या के बाद प्राकृतिक सिद्धान्त निरूपण करना, जिसमें बौद्धिकता का विशेष महत्व है। धर्म में भावना का विशेष महत्त्व है और विज्ञान में बुद्धि और तर्क का। इस तरह आस्तिक और नास्तिक दोनों का धर्म के प्रति दृष्टिकोण अलग-अलग रहता है इसीलिए तो सरकार ने धर्मनिरपेक्षता का संविधान लागू किया है ताकि किसी के साथ धार्मिक भेद-भाव नहीं किया जायेगा।

डॉ. सुधेश ने अपने रचनात्मक निबंध संग्रह 'चिन्तन अनुचिन्तन' में संकलित निबंध 'नास्तिकता' में कहा है कि—नास्तिक ईश्वर के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह नहीं लगाता बल्कि जगत के बारे में भी प्रश्न करता है। उसकी प्रश्नाकुलता एक वैज्ञानिक की प्रश्नाकुलता के समान है। नास्तिक और वैज्ञानिक हर बात को बुद्धि की कसौटी पर कसना चाहता है। इसीलिए मुझे लगता है कि नास्तिकता एक बुद्धिवाद को जन्म देती है, जिससे विज्ञान का विकास होता है। यह नास्तिकता का एक सकारात्मक पक्ष है। (सुधेश 78)

नास्तिकता से यदि विज्ञान का उदय हुआ, विकास हुआ तो क्या यह माना जा सकता है कि वैज्ञानिक भी एक प्रकार का नास्तिक है, क्योंकि वह जगत को किसी ईश्वर की रचना न मानकर उसकी उत्पति की खोज करता है। वैज्ञानिक जगत को प्रकृति से उद्भूत एवं विकसित मानता है। तभी तो वह प्रकृति के रहस्यों को खोलने में लगा हुआ है। धरती, जल, वायु, अग्नि, आकाश यह प्रकृति के पाँच मूल तत्व है। इन तत्वों की खोज से ही भौतिकशास्त्र, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, शून्य विज्ञान, आदि विज्ञानों का विकास हुआ है। विश्व में जहाँ आस्तिकता ने अनेक धर्मों एवं दर्शनों को जन्म दिया है, वहाँ नास्तिकता ने भी विचारधाराओं, विज्ञान की शाखाओं और समाज विज्ञान के अनुशासनों का विकास किया है। नास्तिकता की शक्ति उसका नकार है, जो प्रश्नाकुलता में रुपान्तरित होकर बुद्धिवाद को जन्म देता है, और बुद्धिवाद विज्ञान को जन्म देता है। नास्तिकता एक बौद्धिक दृष्टिकोण है, जो मनुष्य को बुद्धिवाद एवं विज्ञान की ओर ले जाता है, क्योंकि विचारवान मनुष्य जगत के बारे में अधिक से अधिक जानता है, ताकि वह अपने भौतिक जीवन को सुखी बना सके। इसके विपरीत

आस्तिकता एक भावात्मक दृष्टिकोण है, जो मानव को धर्म एवं ईश्वर भक्ति की ओर ले जाता है। भक्ति से भी भावना प्रधान व्यक्ति भावात्मक सुख पाता है। सुख की तलाश आस्तिक-नास्तिक दोनों को है। एक का लक्ष्य अध्यात्मिक आनन्द है, दूसरे का लक्ष्य भौतिक सुख सुविधा है।

डॉ. सुधेश ने अपने निबंध संग्रह 'चिन्तन अनुचिन्तन' में कहा है कि— यदि कुछ वैज्ञानिक चर्च में जाते हैं या नमाज पढ़ते हैं या मन्दिर में जाते हैं, तो यह उनका सामाजिक व्यवहार है, क्योंकि वह किसी धार्मिक समुदाय से सम्बन्धित हैं। इससे उनकी आस्था प्रकट नहीं होती अथवा वह किसी धर्म के खाते में नहीं डाले जा सकते क्योंकि वह जो वैज्ञानिक शोध कर रहे होते हैं, वह किसी धर्म से सम्बन्धित नहीं है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि विज्ञान धर्म का अतिक्रमण करता है अथवा विज्ञान धर्म-निरपेक्ष है। यदि विज्ञान धर्म निरपेक्ष है तो वैज्ञानिक धर्म सापेक्ष कैसे हो सकता है। यदि वैज्ञानिक धर्म-निरपेक्ष है तो वह नास्तिक की श्रेणी में आता है। इसलिए मेरी यह मान्यता है कि नास्तिकता से विज्ञान का उदय हुआ है यह नास्तिकता का सकारात्मक पक्ष है।(सुधेश 78)

स्वतंत्रता के पचास वर्ष बाद यदि हमें धर्मनिरपेक्षता के अर्थ के बारे में आशय स्पष्ट है तो अवश्य ही धर्म के प्रति हमारे मन में अनेक उलझने आज भी हैं, जिनका समाधान हम नहीं कर पा रहे हैं। इसका अर्थ ही कुछ लोग गलत मानते हैं। धर्मनिरपेक्षता का मतलब यह कभी भी नहीं है कि धर्म से हमें कुछ नहीं लेना या धर्म के बारे में कोई पक्ष नहीं लेना या धर्म की हमें आज्ञा नहीं करनी है। बल्कि इसका अर्थ यह है कि किसी धर्म का पक्ष नहीं लिया जाएगा। क्योंकि सभी धर्मों का अगर हर जगह पर अलग-अलग पक्ष लिया जाए तो यह सम्भव नहीं है इससे तो बहुत-सी कुप्रथाएँ प्रचलित होगी और कोई भी संस्था होगी फिर तो वह किसी एक धर्म की होगी। इस तरह हमें यह बातों को अच्छे से समझना है और नई पीढ़ी को इन बातों का ज्ञान देना है ताकि कोई इसका गलत अर्थ न समझे। वर्तमान के निबंधकारों में डॉ. सुधेश ने इसी बात को स्पष्ट किया है, जो अभी हमने उनका उदाहरण प्रस्तुत किया है, उससे इसका स्पष्ट पता चलता है। आस्तिक और नास्तिक दोनों का उदाहरण देते हुए उन्होंने यही बताया है कि सभी धर्म निरपेक्ष है उनका अपना-अपना दृष्टिकोण है और सभी अपनी सकारात्मक सोच को लेकर चलते हैं।

ऐतिहासिक रूप से धर्म की दो अवधारणाएँ उपस्थित रही है, एक वह जो मनुष्य और संस्कृति के संबंध को पवित्र मानती है और यह स्वीकार करती है कि मानव सृजन चेतना का संवाहक है इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वह

सृष्टि के केन्द्र में है। भारतीय सभ्यता महानतम स्तर पर पवित्रता के इस सार्वभौमिक बोध से अनुप्राणित होती रहेगी। धर्म के परिवेश में मनुष्य शक्तिशाली होने के कारण शोषक नहीं सिर्फ अपने दायित्व-बोध के प्रति सजग होना है। इसी के विपरीत धर्म की एक दूसरी अवधारणा भी है, जिसकी अपनी वैधता किसी मसीहा की वाणी या किसी विशिष्ट पुस्तक के वचनों से प्राप्त होती है। वह एक ऐसी वैधता लिए होती है, जिस पर न संदेह प्रकट किया जा सकता है और न ही चुनौती दी जा सकती है। कहना न होगा कि पिछले पचास वर्षों में धर्मनिरपेक्षता का सम्बन्ध धर्म की इस दूसरी अवधारणा से संबंधित था, जबकि उस अवधारणा से नहीं जो भारतीय सभ्यता के केन्द्र में थी। यह एक ऐतिहासिक विडम्बना ही मानी जाएगी कि हमारे सत्ता गुरू शासकों ने स्वतंत्रता के बाद भारतीय जनसाधारण को एक ऐसे धर्म से निरपेक्ष होने के लिए बाध्य किया जिसका उनसे कोई लेना-देना नहीं था और इस प्रक्रिया में उन्हें एक ऐसी समाज व्यवस्था में रहने के लिए विवश किया गया, जहाँ स्वयं उनकी धार्मिक आस्थाएँ एक हाशिए की वस्तु बनकर रह गई।

स्वतंत्रता के बाद हमने जिस तथाकथित धर्मनिरपेक्ष समाज का निर्माण किया उसमें इस सम्पूर्ण मानव के लिए कोई स्थान नहीं है। उपरी चिन्तन में हम भारतीय हैं, भीतर के अँधेरे में हम हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख हैं। अँधेरे में कोई विश्वास पनपता नहीं, सड़ता है इसलिए जब कभी वह बाहर आता है तो अपने सहज आत्मीय स्वरूप में नहीं बल्कि एक विकृत दमित भावना के रूप में। समय-समय पर होने वाले साम्प्रदायिक दंगे हमें उस अँधेरे की झलक दिखाते हैं यहाँ एक समाज ने धर्म को फेंक दिया है। क्या आज का भारतीय जिसमें केवल हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख नहीं बल्कि वह लाखों आदिवासी शामिल हैं जिनके अपने धार्मिक निजी विश्वास हैं। सैंकड़ों विश्वासों, आस्थाओं, स्मृतियों और संस्कारों का यह संगम केवल एक ऐसी संस्कृति में संभव हो सकता है जिसमें संपूर्ण मनुष्य की परिकल्पना निहित रहती है।

धर्मनिरपेक्षता का सिद्धान्त प्रगति और विकास की छलनाओं के साथ जी रहा है। स्वतंत्रता के बाद हम अपने को यह सुविधाजनक छलावा देते आए थे अपने जीवन में धर्म को निष्कासित करने पर ही हम विकास के रास्ते पर आगे बढ़ सकते हैं। नेहरू युग का यह सबसे सुंदर स्वप्न था कि यदि हम पश्चिमी देशों की तरह अपने देश में विराट पैमाने पर औद्योगीकरण कर सकें तो देश की समस्त जातीय समस्याएँ अपने आप हल हो जाएँगी। आज विकास की छलनाएँ हमारे सामने अपने पूरे खोखलेपन के साथ प्रकट हो गई हैं किन्तु उससे जुड़ी

धर्मनिरपेक्षता की छलना से मोहभंग आज भी नहीं हो पाया है। दोनों ही हमारी मानसिक गुलामी के पक्ष हैं। इसी तरह की मानसिक गुलामी और गरीबी हमने अंग्रेजों के शासन के भीतर भी महसूस की थी। बीसवीं शती के आरम्भिक तीन दशकों में भारतीय जीवन के कर्म और चिन्तन के स्तर पर जो असाधारण सृजनशीलता का दौर आया था वह आज अविश्वसनीय जान पड़ता है। गाँधी, तिलक, रवींद्रनाथ टैगोर, श्री अरविंद के नाम याद आते हैं। उनकी तुलना में आज हमारी आध्यात्मिक अवस्था और व्यक्तिगत कार्य प्रणाली कितनी फूहड़, अश्लील और नकली हो गई है क्या इसकी कल्पना हमारे पूर्वज कर सकते थे। समय के दौर ने इन सब को इतना प्रभावित किया है कि आज हम इन स्थितियों में आ गए हैं।

आधुनिक युग की ये क्या उल्लेखनीय विडंबनाएँ नहीं है कि ऊपर से दिखने वाली दो विपरीत विचारधाराएँ धार्मिक अंधता और धर्मनिरपेक्ष राज्य-शक्तियाँ दोनों ने ही मनुष्य को आंतरिक और अत्यंकित सत्य से विचलित किया है। 21वीं सदी में हमें पूछना चाहिए कि धर्म तो कैसा धर्म, किस धर्म के प्रति निरपेक्षता जब तक हम इस प्रश्न का उतर नहीं दे पाएँगे तब तक हम धर्म को साम्प्रदायिकता से अलग नहीं कर पाएँगे। भारत में धार्मिक परम्परा का बोध जो लोगों की जीवन समरसता में रचा-बसा है, हमें उसे छद्म साम्प्रदायिकता से अलग करना होगा जो बाहर से आरोपित की जाती है। इस दृष्टि से भारतीय चरित्र के लिए धर्मनिरपेक्षता या सेक्यूलरिज्म असहज और आरोपित है। यह बात अगर विरोधाभास जान पड़े किन्तु एक धर्मावलंबी भारतीय के लिए धर्म को साम्प्रदायिकता से संकुचित करना उतना ही अस्वाभाविक है जितना धर्म के प्रति निरपेक्ष रहना। जब कभी भारतीय संस्कृति में ठहराव और संकीर्णता के लक्षण दिखाई दिए तभी उसी संस्कृति के भीतर उसके विरोध में कबीर, नानक, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद और गाँधी जी ने हिन्दू धर्म को आत्मदूषित संकीर्णता से उभारकर एक तरह भारतीय परम्परा से जुड़ने के लिए उत्प्रेरित किया।

जिस तरह विकास के नाम पर इस वर्ग ने मनुष्य और प्रकृति के सहज संबंध को खंडित किया ठीक उसी तरह एक तथाकथित राज्यसत्ता के नाम पर उसने एक भारतीय के धर्म संस्कार और उसके सभ्यता बोध के बीच जो सम्बन्ध सदा से चल रहा था उसे भी खंडित किया है। यदि आर्थिक स्तर पर प्रकृति मनुष्य के शोषण का साधन बनी तो राष्ट्रीय स्तर पर मानव की धार्मिक आस्था का शोषण हर सेक्यूलर पार्टी अपने निहित स्वार्थों के लिए कर सकती थी।

अल्पसंख्यकों को राष्ट्र के भीतर हमेशा अल्पसंख्यक रखना ताकि वह अपने को हमेशा असुरक्षित महसूस करते रहें और असुरक्षा-बोध को अपनी वोटों से भुनाते रहें जिसका परिणाम आज हम भुगत रहे हैं। ये संरक्षण और सुरक्षा के नाम पर भारत के सामाजिक-राजनीतिक जीवन को हमेशा के लिए विभाजित रखने की स्वार्थपरक मानसिकता थी।

'नास्तिकता' निबंध में डॉ. सुधेश ने कहा है कि—'आज की समग्र बौद्धिकता के बावजूद आधुनिक मनुष्य धार्मिक संकीर्णता, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रीयता, भाषावाद, नस्लवाद से ग्रस्त है। क्या ये संकीर्णताएँ बुद्धि-सम्मत हैं? विज्ञान और तकनीकी में अपार उन्नति के बाद भी ऐसा दिन कभी नहीं आएगा कि वह धर्म एवं आस्तिकता को मिटा दे, बल्कि विज्ञान मनुष्य को अधिक क्रूर एवं दानव बनाता जा रहा है। धार्मिक एवं आस्तिक लोग दुनिया में रहेंगे ही। आवश्यकता इस बात की है कि बुद्धिवाद और विज्ञान मानव को अधिक मानवीय बनने में सहायता करे। (सुधेश 82)

इस तरह धर्मनिरपेक्षता को लेकर हमारे समाज में ऐसे मुद्दे चलते रहे जो कभी सार्थक सिद्ध हुए और कभी भारतीय संस्कृति को आघात पहुँचाते रहे। सबसे बड़ी बात तो यह है कि धर्मनिरपेक्षता का अर्थ ही कुछ लोगों ने गलत बताया और समझा, जबकि ऐसा इसका अर्थ नहीं था। धर्मनिरपेक्ष होना ऐसा कदापि नहीं था कि धर्म से हमें कुछ लेना-देना नहीं है, या फिर अब हमें धर्म की आज्ञा-पालना नहीं करनी, जबकि धर्मनिरपेक्ष होना यह था कि धर्म के नाम पर कभी भी भेद-भाव नहीं किया जाएगा। धर्मनिरपेक्षता का होना अति आवश्यक था और यह आज सार्थक सिद्ध भी हुआ है। हमारे संविधान में भी यही कहा गया है कि धर्म के नाम पर किसी भी राज्य में भेदभाव नहीं किया जाएगा और किसी भी संस्था में भी धर्म को आधार मानकर या किसी व्यक्ति का धर्म देखकर कोई निश्चय नहीं लिया जाएगा। भारतीय धर्मनिरपेक्षता सभी धर्मों को आदर व सम्मान देना भारतीय संस्कृति का प्राचीन काल से ही विशिष्ट लक्षण रहा है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है, यहाँ सभी नागरिकों को स्वतंत्र रूप से धर्म को मानने व उसके अनुसार आचरण करने की स्वतंत्रता है। धर्मनिरपेक्षता भारतीय संविधान के आधारभूत ढांचे में शामिल है। धर्मनिरपेक्षता का सीधा-सादा अर्थ सिर्फ इतना है, किसी भी धर्म का पक्ष नहीं लिया जाएगा। जब इंदिरा गांधी ने संविधान में बदलाव करते हुए देश को धर्मनिरपेक्ष बनाया था, तो उनका मतलब था कि भारत सरकार किसी भी धर्म विशेष का पक्ष नहीं लेगी। सभी नागरिक सरकार के लिए समान रहेंगे।

विज्ञान और धर्म दोनों पृथक-पृथक नहीं है, वरन एक सिक्के के दो पहलु हैं, दोनों का एक ही उद्देश्य है दोनों सत्य का अन्वेषण करते हैं। विज्ञान सत्य का परीक्षण कर स्वीकार करता है और धर्म आस्था के रूप में स्वीकार किया जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि विज्ञान के बिना धर्म अंधा है और धर्म के बिना विज्ञान। यही से यह स्पष्ट होता है कि विज्ञान और धर्म एक दूसरे के साथ जुड़े हैं दोनों ही सत्य की खोज अपने-अपने दृष्टिकोण से करते हैं। इन दोनों का लक्ष्य सत्य की खोज करना और प्रकृति को समझना है। विज्ञान का लक्ष्य हमारे भौतिक पर्यावरण के मूलभूत सिद्धान्तों को समझना है। धर्म हमारे आत्मज्ञान को जगाता है। विज्ञान यहाँ हमारी बुद्धि को प्रकाशमान करती है, वहीं धर्म हमारी आत्मा को प्रकाशित करता है। हालांकि विज्ञान और धर्म में प्राथमिक विरोध माना जाता है लेकिन यह दोनों एक दूसरे से अंतर संबंधित विषय है और दोनों का ही बराबर महत्व है।

विज्ञान तर्क और सबूतों पर चलता है जबकि धर्म में यह आवश्यक नहीं है। धर्म में सिर्फ अपनी बुद्धि के अनुसार आस्था होनी ही आवश्यक है। धर्म, कल्पना और विश्वास पर आधारित होता है लेकिन विज्ञान केवल कल्पना तक ही तवज्जो देता है जब तक कि कल्पना साकार रूप लेकर सबूत न बन जाये। धर्म पूरी घटना देखता है, धर्म कहता है कि एक नहीं दो घटनाएँ हो रही हैं, धर्म कहता है कि समग्रता में देखो। इस तरह धर्म केवल बाहर नहीं देखता, भीतर भी देखता है। विज्ञान सिर्फ बाहर देखता है। मन को भी समझना आवश्यक है, तो विज्ञान धार्मिक है लेकिन आधा धार्मिक है, पूरा धार्मिक हुआ उस को जानना और मन को जानना। इस तरह यह स्पष्ट पता चलता है कि दोनों सत्य को जानने की कोशिश करते हैं दोनों एक दूसरे से संबंधित भी है और अलग भी। अतः यही कहा जा सकता है कि दोनों में कुछ अंतर भी है और दोनों में संबंध भी है।

जब भी धर्म और विज्ञान के अंतर की बात करते हैं तो इन दोनों के बीच का अंतर उनके सिद्धान्तों और अवधारणाओं में मौजूद हैं। विज्ञान और धर्म के बीच संबंध बहुत विवादास्पद भी है, धर्म विश्वास पर आधारित होता है जबकि विज्ञान तर्क पर आधारित है। यही कारण है कि यह दोनों प्रायः संगत नहीं होते। ईश्वर का अस्तित्व धर्म में मुख्य अवधारणाओं में से एक है। ब्रह्मांड के निर्माण या निर्माण को धर्म के अनुसार भगवान का कार्य माना जाता है और विज्ञान का काम करने का अपना तरीका है और इसका धार्मिक विश्वासों के साथ कुछ भी नहीं है। यह हमेशा तर्क पर आधारित होता है कुछ के लिए सच के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए वहाँ सबूत होना चाहिए।

विज्ञान और धर्म दोनों ही मनुष्य जीवन को समान रूप से प्रभावित करते हैं। एक और जहाँ विज्ञान तथ्यों व प्रयोगों पर आधारित है वहीं दूसरी और धर्म आस्था और विश्वास पर। दोनों ही मनुष्य की अपार शक्ति का स्रोत हैं। विज्ञान जहाँ मानव को भौतिक सुखों की प्राप्ति कराता है, वहीं धर्म से मानव में आध्यात्मिक शक्ति आती है। धर्म के मार्ग पर चलकर वह शांति की प्राप्ति करता है। विज्ञान और धर्म दोनों का स्वरूप अत्यंत विशाल है। प्रश्न यह नहीं है कि दोनों में से श्रेष्ठ कौन है, अपितु यह है कि यह दोनों जीवन-मार्ग हमारे जीवन को किस प्रकार उन्नतिशील एवं शांतिपूर्ण बना सकते हैं। विज्ञान का स्वरूप असीमित है। विज्ञान जो भी कार्य करता है वह अपने तरीके से करता है वह तर्क पर आधारित होता है और सबूत चाहता है। कोई भी वैज्ञानिक अपने अनुसंधान और प्रयोगों द्वारा सत्य को एकत्रित करने के लिए नित्य नई खोज के लिए प्रयासरत रहता है। उसके मन में जो कल्पना होती है वह इन खोज, अनुसंधान और प्रयोगों की आधार होती है। मानव कभी उड़ते हुए पक्षियों को देखकर परिकल्पना किया करता था कि वह भी इन पक्षियों की भाँति उड़ान भर सकता है। उसकी यही परिकल्पना अनेक प्रयोगों की आधार थी।

वर्तमान के निबंधों में भी निबंधकारों ने वैज्ञानिक खोज के बारे में कहा है कि मानव ही सब कुछ है धर्म उसकी आस्था और विश्वास है लेकिन कार्य करता तो मानव ही है। उनका कहना है कि विज्ञान ने खुद खोज की है और दूसरों को भी छुटकारा दिलाता है, विज्ञान कहीं भी धर्म का विरोध नहीं करती। कैलाश वाजपेयी के निबंध संग्रह 'हैं कुछ, दीखे और' में संकलित एक उदाहरण है—क्या शुद्ध विज्ञान जो प्रकृति की बुनावट परखने निकला था अब स्वयं भी उलटबांसी या सन्ध्याभाषा बोलने लगा है क्या भौतिकी के नियमों के सहारे आज वैज्ञानिक भी उसी मनोभूमि पर पहुँच रहा है जहाँ तर्क, द्वंद्वात्मकता, व्यंग्य, गर्वोक्ति और संशय सब-के-सब पीछे छूट जाते हैं और बाकी रह जाती है एक तरल सदाशयता और घुमड़ती है सिर्फ सीधी सी प्रार्थना—

दुर्जनः सज्जनों भूयात
सज्जनः शान्तिमप्नुयत,
शान्तो मुच्यते बन्धेक्यो
मुक्ताश्चान्यान विमोचते।

यानि दुर्जन सज्जन हो जाएँ, सज्जन शान्ति पाएँ, शांतजन बन्धन से छूट जाएँ और जो छुटकारा पा गये हैं वे दूसरों को छुटकारा दिलाएँ।(वाजपेयी 13)

विज्ञान के रहस्यपरक होते चले जाने की कहानी दरअसल भौतिकी के उन नियमों से जुड़ी है, जो पिछले कुछ दशकों में उद्घाटित हुए हैं, भौतिकी जिसे अंग्रेजी में 'फ़िजिक्स' कहा जाता है मूलत: ग्रीक भाषा का शब्द है, जिस का अर्थ है वस्तुओं की मूल प्रकृति को देखने परखने का प्रयत्न। कहना न होगा कि कपिल के सांख्य से लेकर नागार्जुन के शून्यवाद तक पूर्व के सभी ऋषि विचारकों का प्रयत्न भी यही था। धर्म पर हमारी आस्था और विश्वास होता है। हम सभी धर्म को अति महत्व देते हैं क्योंकि हमारी आस्था उससे जुड़ी हुई है और विज्ञान धर्म की बुराई कदापि नहीं करता है, उसका अपना कार्य करने का तरीका है वह अपना तर्क निकालता है। इस तरह सभी विद्वानों का मत देखने से स्पष्ट होता है दोनों में अंतर भी है और समानता भी है। दोनों का कार्य होता है सत्य की खोज करना। धर्म भी सत्य पर आधारित है और उसी पर विश्वास करता है उसी तरह विज्ञान भी सत्य की खोज करता है तर्क के आधार पर। विज्ञान स्वयं में अनन्त शक्तियों का भण्डार है। इसके अंतर्गत वह अपनी कल्पना को अपने किये जाने वाले प्रयोगों के आधार पर साकार रूप देता है।

अत: यह सत्य है कि विज्ञान और धर्म का परस्पर समन्वय ही उसे प्रगति के उत्कर्ष तक ले जाता है। जब विज्ञान का सहारा लेकर मानव कुमार्ग पर चल पड़ता है तो धर्म का संबल प्राप्त करना अनिवार्य हो जाता है। धर्म इस स्थिति में मानव का तारणहार बन जाता है। दूसरी ओर, जब धर्म की छत्रछाया में अधार्मिक व्यक्तियों का समूह आम लोगों को ठगने का प्रयास करते हैं तब विज्ञान का अलोक उन्हें सीधे रास्ते पर लाने की चेष्टा करता है।

राजनीति का अर्थ होता है दूसरों को कैसे जीत लूं और धर्म होता है स्वयं को कैसे जीत लूं, इसलिए धर्म और राजनीति को विपरीत मान लिया जाता है। अगर धर्म फैले तो राजनीति अपने आप सिकुड़ जाएगी और अगर धर्म न फैला तो राजनीति फैलती रहेगी। आदमी जीतेगा अगर वह जीतने की कोशिश करेगा तो जीतने की आकांक्षा उसके प्राणों में है। अगर अपने आप को नहीं जीतेगा तो दूसरों को जीतेगा। धर्म का काम होता है लोगों को सदाचारी और धार्मिक बनाना राजनीति का उद्देश्य होता है लोगों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उनके हित में काम करना। लेकिन जब धर्म और राजनीति दोनों मिलकर नहीं चलते तो फिर कुछ समस्याएँ उत्पन्न होती है क्योंकि वह आदमी धार्मिक नहीं होता और लोगों के हित को भूल कर दूसरों को जीतने लग जाता है। धन्यभागी हैं वह जो स्वयं को जीतते हैं क्योंकि स्वयं को जीतकर ही परमात्मा के मन्दिर

का द्वार खुलता है, शाश्वत जीवन उपलब्ध होता है। जो दूसरों को जीतने में लगे रहते हैं वह लोग बहुत अभागे हैं क्योंकि दूसरों को तो वह कभी जीत ही नहीं पाते, दूसरों को जीतने की चेष्टा में स्वयं को भी गवा बैठते हैं।

धर्म और राजनीति का आपस में संबंध होना अनिवार्य है तभी एक आदमी सच्चा राजनीतिज्ञ होगा और लोगों के हित में काम करेगा। धर्म से हम लोग सदाचारी और प्रेममय बनते हैं वहीं राजनीति का मुख्य काम है लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उनके हित के लिए काम करना। धर्म और राजनीति साथ-साथ चलने चाहिए तभी राजनीति भ्रष्टाचार से रहित होगी। जब यह दोनों एकसाथ नहीं चलते तब हमें भृष्ट राजनीतिज्ञ और कपटी नेता मिलते हैं। लेकिन अगर यह साथ चलते हैं तो एक धार्मिक नेता, जो सदाचारी और स्नेही है, अवश्य ही जनता के हित का ध्यान रखेगा और एक सच्चा राजनीतिज्ञ बनेगा एक सच्चा राजनीतिज्ञ केवल सदाचारी और स्नेही व्यक्ति ही हो सकता है, इसलिए उसे धार्मिक होना ही है।

वर्तमान की अगर हम बात करे तो समस्त प्रश्न अथवा आरोप उठ रहे हैं। एक राजनीतिज्ञ को धार्मिक होना जरूरी है। धर्म के बिना समर्थ और सार्थक राजनीति नहीं हो सकती। हमारे राजनीतिज्ञ नेताओं को धर्म की पालना करनी होगी, कहीं ऐसा न हो कि धर्म की राजनीति की जाये। भारत देश जिस ने विश्व के सभी धर्मों को सत्य के रूप में स्वीकार किया हो। वह देश जो कभी सोने की चिड़िया हुआ करता था, जहाँ विश्व भर में सबसे ज्यादा भाषाओं और धर्म में आस्था रखने वाले लोग रहते हों, जहाँ की एकता और अखण्डता इतिहास रचती हो, जहाँ की सभ्यता, संस्कृति, संस्कारों को दूसरे देशों में बहुत बड़ी मिसाल बताया जाता हो, वहाँ पर कुछ स्वार्थ नेताओं की नीति ने राजनीति का धर्म भुलाकर अपनी ज़िम्मेदारी के कर्तव्य को अपने से अलग कर दिया है।

वर्तमान में राजनीति और धर्म को देखते हैं तो अधिकतर यह अलग ही मिलते हैं क्योंकि भूमंडलीकरण के दौर में सभी राजनेता स्वार्थी हैं केवल स्वार्थ के लिए काम कर रहे हैं उनको धर्म से कुछ लेना देना नहीं हैं, उन्होंने धर्म को अलग ही कर दिया है। आज के समय में सभी को अपनी वोट तक लेना देना है उसके लिए चाहे कुछ भी करना पड़े। आज हम प्रायः देखते हैं कि नेताओं के बीच लड़ाई-झगड़े चलते हैं अपने स्वार्थ के लिए और ऐसे राजनीतिज्ञ नेता हमारे देश को क्या देंगे? बर्बाद कर रहे है हमें और हमारी आने वाली पीढ़ी को। आज

हमें ऐसे नेताओं को निकालना होगा। इन बातों पर विचार विमर्श करना होगा और धर्म और राजनीति को एक करना होगा। कैलाश वाजपेयी अपने निबंध संग्रह 'शब्द संसार' में संकलित निबंध 'धर्म और भूमंडलीकरण' में कहते हैं कि—'मानवता के धर्म की फ़िक्र किसी को भी नहीं है कहीं धर्म तो कहीं नस्लवाद की लड़ाई जारी है भारत में धर्म और नस्लवाद की लड़ाई को नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता देश की जनता की आँखें तरस गई है इस बात के लिए कि कब जिस नेता को हम अपना बहुमूल्य वोट देके सत्ता तक पहुँचाया कभी वह जनता से किये गये वादों को पूरा करने हेतु सरकार से लड़ाई करता, कभी वह अपने क्षेत्र की जनता के लिए सस्ती शिक्षा, बेरोजगारी स्वास्थ्य, बिजली, पानी जीवन सुरक्षा के मसले हल न होने के कारण अनशन करता।' (वाजपेयी 167)

अब हमारे देश में राजनीतिक नेता चाहते हैं कि धर्म को राजनीति से अलग रखा जाए। क्या ऐसा करने से देश का कल्याण होगा हम सभी जानते हैं कि ऐसा करने से भृष्टाचार बढ़ेगा। जिस राजनीति में धर्म नहीं है वह सच्चे अर्थों में शांति नहीं ला सकती है। राजनीति में धर्म का होना आवश्यक है और वह धर्म 'मानवधर्म' है। इसमें हिन्दू, जैन, इसाई, मुसलमान, सिक्ख, बौद्ध का कोई प्रश्न नहीं, मानवता के नियमों पर चलकर राष्ट्र की सेवा सच्चे अर्थ में की जा सकती है और देशवासियों को सुखी बनाया जा सकता है। यह ऊपर जो बात की गई है यह नियम किसी धर्म विशेष के नहीं है, सब धर्मों में इनका उल्लेख हो सकता है मगर कुदरती तौर पर यह मानवधर्म है। राजनीति में या सरकार के कामकाज में मानवधर्म के नियमों का पालन करना ही धर्मनिरपेक्ष सरकार बनाना है।

उपसंहार

अत: हम यह कह सकते हैं कि धर्म और राजनीति एक साथ चलकर हमारे समाज का कल्याण कर सकते हैं। कुछ लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए धर्म को राजनीति से अलग रखा और इसका प्रभाव हमारे जीवन और समाज में आज देखने को मिल रहा है। हमारी आने वाली नई पीढ़ी आज बर्बाद हो रही है बहुत समस्याओं ने उन्हें बंधी बना दिया है। इसलिए साहित्य के द्वारा आज शोध कार्य हो रहे हैं और इससे आने वाली पीढ़ी को ज्ञान प्राप्त होगा तभी यह सब मिट सकता है, जब हमें अपने वोट का सही प्रयोग करने का पता चल जायेगा, तब हमारा समाज व्यवस्थित होगा। जब राज नेता धार्मिक होगा वह अपना कार्य ईमानदारी से करेगा और राजनीति का जो उद्देश्य है वह लोगों की

आवश्यकता और उनके हित के लिए एक अच्छा नेता होना जो धार्मिक होगा वह कार्य करेगा।

सन्दर्भ :

कैलाश वाजपेयी, **शब्द संसार**, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2008

कैलाश वाजपेयी, **है कुछ—दीखे और,** भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2012

सुधेश, **चिन्तन-अनुचिन्तन**, यश पब्लिकेशन, 2012

श्रीराम परिहार, **परम्परा का पुनराख्यान**, यश पब्लिकेशन, 2012

श्रीराम परिहार, **रसवंती बोले तो**, यश पब्लिकेशन, 2018

❑

Manpreet Singh Sandhu
Village- Lakho Wali, P.O. Chak Budho Ke,
Teh.- Jalaalbad, Dist.- Fazilka (Punjab)
Mob. 9815805256
Email : ms4003555@gmail.com

सोशल मीडिया के दौर में हिंदी एवं राष्ट्रवाद का समन्वय : एक अध्ययन

• विशाल शर्मा

भारत राष्ट्र की संकल्पना में भारतीय भाषाओं का योगदान पुरातन काल से रहा है। हमारी संस्कृति में राष्ट्रवाद की अवधारणा की सशक्त व्याख्या तत्कालीन संस्कृत भाषा में व्यक्त की गई है जिसके प्रमाण के तौर पर वैदिक साहित्य माना जाता है। जनसंचार के माध्यमों ने राष्ट्रवाद की उन अवधारणाओं को तत्कालीन माध्यमों के आधार पर संप्रेषित किया है। मौजूदा समय में इंटरनेट की प्रचुरता ने सोशल मीडिया को जनसंचार का सबसे प्रभावशाली माध्यम बनाया है। ऐसे में सोशल मीडिया किस भाषा के माध्यम से राष्ट्रवाद की बयार में शामिल है यह अध्ययन का केंद्र बिंदु है। परम्परागत मीडिया से लेकर सोशल मीडिया तक राष्ट्रवाद की बयार ने जिस प्रकार से एक लंबी यात्रा तय की है भाषा का समन्वय भी उसके साथ उसी प्रकार का रहा है। संस्कृत से अभिव्यक्त होती राष्ट्रवाद की अवधारणा ने विभिन्न भाषाओं व बोलियों के साथ चलते-चलते हिंदी को सोशल मीडिया पर सबसे प्रखर बना दिया है।

भाषा एवं संचार

संचार और भाषा का सम्बन्ध अपने जन्म के साथ ही कहा जा सकता है। दोनों का परस्पर अंतर्सम्बन्ध एक-दूसरे को समृद्ध करता है। संचार के क्षेत्र में उसका अस्तित्व ही भाषा के अस्तित्व से जुड़ा है। भाषा भाव की जननी है, संचार माध्यम भाव संप्रेषण का काम करते हैं जिसमें भाषा की महती भूमिका है। संचार माध्यमों के बारे में अगर गौर करें तो लिखित माध्यमों की उत्पत्ति से पहले भी भाषा संचार में प्रधान रही है। मौखिक संचार पूरी तरह से भाषा और उसके भाव पर आधारित है। यहां तक कि अगर शब्द रहित संचार अर्थात् सांकेतिक संचार (दिशा निर्देश) के अनुसार संचार स्थापित करने में भी भाषा महत्त्वपूर्ण है। अतः संचार और उसके माध्यमों में भाषा की मौजूदगी और उसका प्रसारण माध्यम ही नहीं बल्कि संचार का भी क्षेत्र विस्तृत कर देती है।

बहुभाषायी देश भारत में एक ही भाषा के तौर पर संचार की व्यवस्था बनी रही हो यह प्राय: सहजता से देखने को नहीं मिलता है। पश्चिम के दृष्टिकोण में ऐसा देखा जा सकता है जहां एक या दो मुख्य: भाषा के आधार पर पूरे समाज के साथ संवाद स्थापित किया जा सके। मगर भारत का अस्तित्व ही विभिन्नता के साथ एकता को स्थापित किए हुए है। भारत भाषाओं का ही नहीं बल्कि बोलियों का भी देश है। ऐसे में आम जनमानस तक संवाद स्थापित करना अपने आप में एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। एक अरसे से संवाद की सुलभता और एक राष्ट्र, एक भाषा के तौर पर हिंदी को स्थापित करने की चर्चा चलती रही है। इस वर्ष हिंदी दिवस पर गृह मंत्री के हिंदी को राष्ट्र की एक भाषा के तौर पर बताए जाने के वक्तव्य के बाद यह एक बार फिर से बहस का मुद्दा बन गया। दक्षिण के राज्यों से हिंदी को थोपने व उसके विरोध की बात प्रमुखता से मीडिया में उठाई जाने लगी। हालांकि हिंदी को राष्ट्र भाषा के तौर पर देखे जाने का यह विरोध कुछ नया नहीं है बल्कि इसकी शुरुआत तो आजाद हिंदुस्तान से पहले हो चुकी थी। अर्थात् आजादी मिलने से पहले हिंदी को राष्ट्रभाषा के तौर पर न स्थापित किया जा सके इसका विरोध गुलामी के दौर में ही शुरू हो गया था।

राष्ट्र की भाषा के तौर पर हिंदी

हिंदी को आम लोगों की भाषा या आम जनमानस की भाषा के तौर पर सबसे पहले महात्मा गांधी ने देखा था। गांधी हिंदी को जनमानस की भाषा कहते थे। वर्ष 1918 में मध्य प्रदेश के इंदौर में आयोजित हिंदी साहित्य सम्मेलन में गांधी ने राष्ट्र की भाषा के तौर पर हिंदी को बनाने की बात कही थी।[1] इंदौर के विस्को पार्क (अब नेहरू पार्क) में हुए मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति के कार्यक्रम में गांधी ने आजादी से पहले ही हिंदी को राष्ट्रभाषा के तौर पर स्वीकार करने की अपील की थी। उन्होंने कहा था कि 'हिंदुस्तान को सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो कोई माने या ना माने राष्ट्रभाषा हिंदी ही बन सकती है'। गांधी का हिंदी को राष्ट्रभाषा के तौर पर स्थापित करना हिंदी को थोपना नहीं था ना ही वह यह चाहते थे कि हिंदी दूसरी भाषाओं को समाप्त कर एक मात्र भाषा के तौर पर स्थापित हो जाए। वास्तविक कारण जनमानस के साथ संपर्क का था और हिंदी से बेहतर विकल्प उस समय भी कोई दूसरा नहीं था। गांधी मानते थे कि हिंदी ही ऐसी भाषा है जो उत्तर को दक्षिण के साथ व सभी धर्मों को एक दूसरे से जोड़ सकती है। इसलिए एकीकरण के उद्देश्य से हिंदी ही राष्ट्र की भाषा बनें यह उनकी दूरदर्शिता कही जानी चाहिए। गांधी की तरह नेहरू भी, आम जनमानस के साथ संवाद के लिए एक भाषा, जिसे आधिकारिक माना जाए उसके पक्षधर थे। वर्ष

1937 में नेहरू ने अपनी राय रखते हुए कहा था कि भारत वर्ष में आधिकारिक रूप से एक भाषा का होना आवश्यक है और हिंदुस्तानी भाषा से बेहतर और क्या हो सकता है।[2] वर्ष 1947 में संविधान सभा के गठन के दौरान भी यह निर्णय लिया गया कि सभा के कामकाज की भाषा हिंदुस्तानी या अंग्रेजी होगी। आगे चलकर हिंदुस्तानी शब्द के स्थान पर हिंदी को रखा गया।

हिंदी ने हिंदुस्तानी भाषा के रूप में अपनी पहचान निरंतर संघर्ष से बनाई है। राजभाषा विभाग भारत सरकार के आंकड़ों पर दृष्टिपात करें तो भारत में सबसे ज्यादा हिंदी भाषा को बोलने वाले लोग हैं। देश की तकरीबन 40 प्रतिशत से ज्यादा जनता हिंदी में संवाद करती है। लेखिका मीनाक्षी व्यास ने लिखा है कि बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी तक हिंदी अपने मूल स्थान दिल्ली व मेरठ के क्षेत्रों में जनबोली के रूप में मौजूद थी। वहां से विभिन्न प्रारूपों में होते हुए यह भारत के विभिन्न प्रदेशों में बोले जाने वाली भाषा के तौर पर स्थापित हुई।[3] हिंदी ने बोली से भाषा तक की यात्रा मात्र कुछ वर्षों में पूरी नहीं की गई थी। बल्कि सैकड़ों वर्षों तक यह बोली के रूप में प्रचलित हुई तब जाकर भाषा के रूप में स्वीकारी गई। संविधान सभा में भी हिंदी को स्थापित करना इतना सहज नहीं रहा था। लंबी बहस और तर्क-वितर्क के बाद 11 से 14 सितंबर 1949 की बैठक में देवनागरी में लिखित हिंदी को राजभाषा के तौर पर स्वीकार किया गया। हालांकि इसके लिए शर्त यह रखी गई कि 15 वर्ष तक सभी सरकारी कामकाज अंग्रेजी में ही किए जाएंगे। बाद में वर्ष 1963 में नेहरू ने राजभाषा अधिनियम को दिशा देते हुए आधिकारिक रूप से हिंदी को संचार की भाषा के तौर पर स्थापित करने का काम किया। नेहरू के इस कदम का विरोध उस दौर की दक्षिण भारत की राजनीतिक शख्सियतों ने किया भी था। इतिहासकार रामचंद्र गुहा अपनी किताब 'इंडिया ऑफ्टर गांधी' में लिखते भी है कि वर्ष 1965 को गणतंत्र दिवस के अवसर पर जब तत्कालीन प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के हिंदी को राजभाषा घोषित करने के फैसले पर तमिलनाडु में विरोध प्रदर्शन शुरू हो गए थे।[4] विरोध प्रदर्शन की यह बात संविधान सभा में हिंदी को दर्जा देने से लेकर 21वीं सदी के भारत तक देखी जा रही है।[5] लेकिन इतने लंबे समय में हिंदी ने स्वयं को पहले से कहीं ज्यादा प्रभावशाली बना लिया है। हिंदी के इस प्रभाव में मीडिया की भूमिका अहम है। मीडिया ने अपने परंपरागत माध्यमों से लेकर सोशल मीडिया के मंचों तक हिंदी को प्रमुखता से प्रस्तुत किया है। जिसके चलते हिंदी के प्रति पीढ़ी दर पीढ़ी आकर्षण बढ़ता जा रहा है। आजादी के दौर में स्वतंत्रता सेनानियों ने हिंदी को लोगों के साथ संवाद स्थापित करने के लिए प्रयुक्त किया। हिंदी भाषा की यह प्रभाव क्षमता आम

जनमानस के बीच में ही नहीं बल्कि संचार माध्यमों पर भी देखी गई है। तत्कालीन समाचार पत्र पत्रिकाएं जो हिंदी में छापी जाती थी, उन्होंने जनमानस के बीच में राष्ट्रीय महत्त्व को समझाने का प्रयास किया और राष्ट्रीय चेतना का काम करते हुए लोगों को भारत का महत्व समझाया। उस दौर के लगभग सभी प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी मीडिया के माध्यम से लोगों तक अपनी बात पहुंचाते थे जिसमें हिंदी प्रमुख थी। हिंदी का यह स्थान केवल भाषा के रूप में ही नहीं बल्कि लोगों को संगठित करने के उद्देश्य से भी रहा होगा। राष्ट्रभाषा के तौर पर हिंदी को स्थापित करने की जागृति वस्तुतः राष्ट्रीय आंदोलन की ही देन है ऐसा कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा। उस दौर में साहित्यकारों, गीतकारों व राजनेताओं से लेकर पत्रकारों तक ने हिंदी का जिस प्रकार से प्रस्तुतिकरण किया उसने संपूर्ण देश को एकसूत्र में पिरोने का कार्य बेहतर ढ़ंग से किया। राष्ट्र के एकीकरण के तौर पर हिंदी की इस भूमिका ने लोगों में राष्टवाद की भावना भरकर देश की आजादी में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इंटरनेट और हिंदी का समन्वय

हिंदी के प्रचार प्रसार के लिए इंटरनेट एक बड़ा सहयोगी बन कर उभरा है। इसमे कोई संदेह नहीं है कि इंटरनेट के आने से हिंदी ने वैश्विक पटल पर तकनीक के माध्यम से भी जगह बनाई है। आधुनिक भाषा के शब्दों में कहें तो हिंदी 'लोकल से ग्लोबल' हो गई है। इंटरनेट के माध्यम से लिखित सामग्री हिंदी में चंद समय में विश्व के किसी भी छोर में एक स्थान से दूसरे स्थान तक सहजता से प्रचारित-प्रसारित होने लगी है। वर्ष 2000 में हिंदी टाइपिंग में यूनिकोड फॉन्ट के आने से भी अनगिनत भाषा प्रेमियों ने इंटरनेट के माध्यम से हिंदी में संवाद स्थापित करना शुरू कर दिया। ई-मेल व इंटरनेट पर खोजने के तौर-तरीकों में बदलाव आ गया।[6] भाषा के प्रचार-प्रसार के तौर पर अगर देखा जाए तो इंटरनेट के आने से सबसे ज्यादा लाभ हिंदी को ही हुआ है। लोग इंटरनेट पर हिंदी में पाठ्य सामग्री से लेकर समाचार पत्र तक खोजने व पढ़ने लगे। हिंदी में सबसे ज्यादा रीडरशिप का दावा करने वाले दैनिक जागरण समाचार पत्र में छपी रिपोर्ट भी यही दर्शाती है। रिपोर्ट में कहा गया है कि हिंदी समाचार पढ़ने वालों की संख्या में वर्ष दर वर्ष बढ़ोत्तरी हो रही है। वर्ष 2016 में डिजिटल माध्यम से 5.5 करोड़ लोग हिंदी में समाचार पत्र पढ़ते थे, जिनकी संख्या अगले पांच वर्ष अर्थात् 2021 तक बढ़कर 14.4 करोड़ होने का अनुमान है। इसी वर्ष से इंटरनेट पर हिंदी अंग्रेजी को पछाड़ देगी क्योंकि अंग्रेजी के मुकाबले में उसका उपयोग करने वाले लोगों की संख्या अधिक होगी। ऐसा अनुमान लगाया गया है

कि 20.1 करोड़ लोग हिंदी का उपयोग करने लगेंगे।[7] हिंदी में उपयोग करने वाले लोगों की संख्या भारतीय भाषाओं से ही नहीं अपितु अंग्रेजी भाषा से भी कहीं ज्यादा हो रही है। गूगल पर प्रत्येक वर्ष हिंदी को पढ़ने वाले लोगों की संख्या में बढ़ोत्तरी यही दर्शाती है। हिंदी की यह सामग्री विभिन्न प्रकार की वेबसाइट्स, सोशल नेटवर्किंग साइट्स से लेकर समस्त प्रकार के मुफ्त ज्ञानकोश पर उपलब्ध हो रही है। गूगल का मानना है कि हिंदी में सामग्री पढ़ने वाले लोग प्रत्येक वर्ष 94 फीसदी की संख्या से बढ़ रहे हैं, जबकि अंग्रेजी में यह दर 17 फीसदी वार्षिक है। हिंदी के लिए इंटरनेट उपयोगकर्ताओं के इस रुझान ने विदेशी कंपनियों को अपनी नीतियों में हिंदी को महत्त्व देने के लिए मजबूर कर दिया है। एक दौर था जब यह माना जाता था कि हिंदी भावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए तो है लेकिन बाजार अर्थात् व्यापार के लिए अंग्रेजी ही भाषा हो सकती है। लेकिन सभी विदेशी कंपनियों के उत्पादों व प्रयासों ने इस सिद्धांत को पीछे छोड़ दिया है। वर्तमान समय की बात करें तो ई कॉमर्स के क्षेत्र में काम कर रही दिग्गज कंपनियां, अमेजन, फ्लिपकार्ट को भी अपने उत्पादों को लोगों तक पहुंचाने में हिंदी को अपनाना पड़ रहा है। गूगल ने अपने ऐप में हिंदी को शामिल किया है। इसके कारण गूगल मैप, व सर्च इंजन से लेकर ढ़ेरों तरह की प्रक्रियाएं अब सहजता के साथ हिंदी में उपलब्ध हैं। इन कंपनियों ने तकनीक के दायरे में हिंदी को इसलिए नहीं लिया कि यह उनका भाषा के लिए अगाध प्रेम है बल्कि इसके पीछे का बड़ा कारण यह है कि हिंदी अब व्यापार के लिए, उनके प्रचार-प्रसार व उन्हें भारतीय उपभोक्ताओं के बीच में स्थापित करने के लिए आवश्यक कारक के रूप में प्रतीत हो रही है। ऐसे में हिंदी को सम्मिलित किए बिना भारतीय जनमानस के बीच स्वयं को बनाए रखना उनके लिए संभव नहीं था।

स्मार्टफोन के आने से हिंदी के उपयोगकर्ताओं की पहुंच का दायरा और बढ़ गया है। भारत में गूगल इंडिया के मार्केटिंग निदेशक संदीप मेनन ने अंग्रेजी समाचार पत्र टाइम्स ऑफ इंडिया को पिछले वर्ष दिए अपने वक्तव्य में कहा है कि, हिंदी में उपयोगकर्ताओं के प्रभाव के चलते गूगल अब अपने उत्पादों के दौरान मुख्य रूप से हिंदी पर ध्यान दे रहा है। जिस तरह से भारत में इंटरनेट के उपयोगकर्ता बढ़ रहे हैं उससे हिंदी का दायरा भी विस्तृत होता जा रहा है।[8] मेनन के अनुसार, मोबाइल फोन ने इंटरनेट की उपलब्धता को बढ़ाया है। पहले जहां 20 मिलियन लोग इंटरनेट पर होते थे, वहीं स्मार्टफोन के आने से यह संख्या वर्ष 2017 में बढ़कर 152 मिलियन हो गई है। जबकि इंटरनेट वर्ल्ड स्टेट्स डॉट कॉम की रिपोर्ट में दावा किया गया है कि भारत में वर्ष 2019 में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 560 मिलियन है। अमेरिका की संख्या जहां 292

मिलियन है तो जापान 118 व रूस 109 मिलियन के साथ बहुत पीछे है। भारत से ज्यादा इंटरनेट उपयोगकर्ता केवल चीन में है, जिनकी संख्या 829 मिलियन है।[9] इंटरनेट का जितना दायरा बढ़ा है उतने ही दमदार तरह से हिंदी ने अपनी पकड़ मजबूत की है। इंटरनेट ने हिंदी के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषाओं मराठी, बंगाली, तमिल, तेलुगु व कन्नड़ को भी यही मंच उपलब्ध कराया है। फिर भी हिंदी की सामंजस्यता देखिए कि मुक्त भाव से उसके आकर्षण ने लोगों की संख्या में अपार वृद्धि की है।

सोशल मीडिया पर हिंदी का राष्ट्रवादी प्रस्तुतिकरण

मीडिया के क्षेत्र में सोशल मीडिया एक बड़ा वैश्विक मंच बन कर उभरा है। एक ऐसा मंच जहां प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बात कहने की स्वतंत्रता ही नहीं मिली है, बल्कि उसे अवसर भी मुहैया कराया गया है। भारत में सोशल मीडिया के इसी प्रभाव ने इसे सबसे ज्यादा लोकप्रिय बना दिया है। वर्तमान समय को देखा जाए तो भारत में सोशल मीडिया आम जनमानस के लिए अपनी बात रखने का सबसे बड़ा मंच है। हम यहां पर मुख्य रूप से फेसबुक, ट्विटर व इंस्टाग्राम की बात कर रहे हैं। इन मंचों की अपनी-अपनी विशेषता है। हालांकि सोशल मीडिया मात्र यहीं तक ही सीमित नहीं है। लेकिन ये मंच वर्तमान समय में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं, इसलिए हमारे अध्ययन का यह हिस्सा है। सोशल मीडिया इन तीनों मंचों में से सबसे लोकप्रिय मंच है, फेसबुक। भारत में सबसे ज्यादा उपयोगकर्ता फेसबुक के ही हैं। जुलाई 2019 के आंकड़ों पर ही अगर गौर किया जाए तो भारत में फेसबुक उपभोक्ता की संख्या 270 मिलियन है। जबकि यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका जहां पर फेसबुक का जन्म हुआ वह 190 मिलियन उपभोक्ताओं के साथ दूसरे नंबर पर है। फेसबुक पर केवल भारतीय उपयोगकर्ता ही अपना प्रभाव नहीं रखे हुए हैं बल्कि हिंदी भी उसी अनुपात में प्रभावशाली है। फेसबुक के उपयोगकर्ताओं को ऐसा लगता है कि हिंदी में कही गई बात ज्यादा प्रभावशाली व बेहतर है। साथ ही वह इसे राष्ट्रवाद से जोड़कर भी देखते हैं। वर्ष 2016 में स्टोरीनोमिक्स ने 'मोस्ट शेयर्ड 5000 न्यूज स्टोरीज इन इंडिया' विषय पर अध्ययन किया था। अध्ययन में उन्होंने पाया कि हिंदी किसी भी अन्य भाषा की तुलना में सोशल मीडिया पर अधिक राष्ट्रवादी दृष्टिकोण के तौर पर देखी जाती है। सोशल मीडिया पर हिंदी के उपयोगकर्ता लगातार बढ़ रहे हैं तथा वह सबसे ज्यादा राष्ट्रवाद की खबरों व मुद्दों पर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं। अर्थात् हिंदी राष्ट्रवाद की बयार को साधने में सक्षम है। हिंदी के साथ सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं का यह व्यवहार भाषा विज्ञानियों के

लिए सुखद समाचार है। कोई भी भाषा जितनी अधिक प्रयोग में लायी जाएगी उसका क्षेत्र उतना ही विस्तृत होता जाता है। सोशल मीडिया के दौर में हिंदी ने तकनीक के साथ जिस तरह से सामंजस्य स्थापित कर स्वयं को प्रस्तुत किया है वह निःसंदेह भाषा के क्षेत्र में एक अद्भुत प्रयास है। हालांकि, हिंदी की विशेषता भी यही रही है कि वह हर परिवेश, भाषा, बोली को अंगीकार करने में झिझक नहीं रखती है। लेकिन तकनीक के साथ हिंदी का इस तरह का आदर भाव भी अपने आप में एक अनूठा कार्य है।

हालांकि, हिंदी को राष्ट्रवाद के सजग प्रहरी के तौर पर परंपरागत मीडिया में भी स्वीकार किया गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के दिनों में देश में हिंदी ने जो जन जागरण का कार्य किया था वह तत्कालीन लेखकों के प्रयासों से समझा जा सकता था। गांधी से लेकर अंबेडकर तक ने हिंदी में समाचार पत्रों का न सिर्फ संपादन किया बल्कि राष्ट्रीय एकता की नींव को मजबूत करने के लिए इसका प्रस्तुतिकरण किया। समाचार पत्रों के बाद जब रेडियो एक जनमाध्यम के तौर पर अवतरित हुआ तो उसके केन्द्र में भी हिंदी ही थी। आकाशवाणी ने हिंदी के साथ जो तालमेल स्थापित किया वह परंपरागत समाचार पत्रों से आगे एक बढ़ता हुआ कदम था। रेडियो के बाद दूरदर्शन ने तो इसकी गति में और तेजी ला दी थी। हिंदी में प्रचारित-प्रसारित दूरदर्शन के संदेशों ने न सिर्फ भाषा को बढ़ाया अपितु जनमानस में सांस्कृतिक चेतना का भी कार्य किया। सांस्कृतिक चेतना को आम जनमानस तक बुनियादी स्तर पर ले जाने का काम दूरदर्शन व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के बाद सोशल मीडिया ने किया। इस माध्यम ने न सिर्फ हिंदी का एक मंच उपलब्ध कराया बल्कि उसका प्रभाव भी बनाए रखा। सोशल मीडिया के इसी प्रभाव ने हिंदी को वैश्विक मंच पर राष्ट्रवाद के सजग प्रहरी के तौर पर स्थापित कर दिया। ऐसा प्रहरी जो राष्ट्र के एकीकरण की संकल्पना को इस माध्यम के जरिए साकार करने के लिए प्रयासरत है।

वैसे तो आजादी के दौर में अंग्रेजी शासन के विरोध में हिंदी को हथियार बनाकर राष्ट्र के एकीकरण का प्रयास तत्कालीन स्वतंत्रता सेनानियों ने किया था। एक तरह से देखा जाए तो राष्ट्र निर्माण के लिए हिंदी की प्रस्तुति अंग्रेजी शासन के विरोध के दौर में उभरी थी जिसमें संचार के माध्यमों की बड़ी भूमिका रही है। मौजूदा समय में हिंदी की लोकप्रियता का विषय अलग है। अब संचार के माध्यमों में भी बदलाव आ गया है। माध्यम ही नहीं बल्कि संचार प्रस्तुत करने व प्राप्त करने के तौर तरीके भी पहले से अलग हैं। तकनीक का समावेश भाषा के साथ है। आम जनमानस की भाषा मीडिया की भाषा हो रही है। राष्ट्र

की संकल्पना पर विमर्श का नया माध्यम सोशल मीडिया के रूप में मिल गया है। जहां पर हिंदी में कहने व सुनने वालों के पास अवसर ही अवसर हैं।

संदर्भ

1 https://www.patrika.com/indore-news/history-of-hindi-diwas-1810578/

2. https://khabar.ndtv.com/news/career/hindi-diwas-2019-know-why-hindi-isnt-the-national-language-2099835

3. https://sol.du.ac.in/mod/book/view.php?id=1370 & chapterid=1116

4. https://khabar.ndtv.com/news/career/hindi-diwas-2019-know-why-hindi-isnt-the-national-language-2099835

5. https://khabar.ndtv.com/news/india/pinarayi-vijayan-attacks-on-amit-shahs-statement-for-hindi-2101253

6. 'सूचना, जन सम्पर्क के साधन एवं पत्रकारिता' में उद्धत, रणवीर चंद्र सोबती, शिल्पी वर्मा, आर बी राम, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली।

7 https://www.jagran.com/news/national-hindi-diwas-2019-know-why-hindi-day-is-celebrated-jagran-special-19576022.html

8. https://timesofindia.indiatimes.com/blogs/academic-interest/95-of-video-consumption-in-india-is-in-regional-languages-hindi-internet-users-will-outnumber-english-users-by-2021/

9. https://www.internetworldstats.com/top20.htm

10. https://www.statista.com/statistics/268136/top-15-countries-based-on-number-of-facebook-users/

11. https://www.jagran.com/technology/social-media-hindi-may-topple-english-on-social-media-in-india-online-hindi-news-15571253.html

❑

Vishal Sharma
Research Scholar,
Dept. of Journalism & Creative Writing,
Central University of Himachal Pradesh,
Dharamsala (H.P.)
Mob. 9411667299
Email : vishalchsm@gmail.com

अजमेर में प्रदर्शित ब्रज मण्डल का अप्रकाशित शिल्प वैभव

● सुश्री अदिति गौड़

सृष्टि के उदात्त जीवन की यथार्थ छवियां उत्कीर्ण करने में इतिहास एवं साहित्य एक अद्वितीय सोपान के रूप में परिलक्षित हुए है। ऐतिहासिक एवं धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार प्रजापति विश्वकर्मा को सृष्टि का सृजनकर्त्ता माना जाता है जो स्वयं ब्रह्मा स्वरूप एवं प्रथम शिल्पी है। छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार सब कलाओं की विद्या शिल्पविद्या है जिसमें नृत्य, गायन, वादन, चित्र, मूर्ति एवं वास्तुगत विज्ञान समाहित है। मूर्ति, शिल्प प्रक्रिया में मूर्ति (प्रतिमा, शिल्प) को सुकृत करने के सम्बन्ध में ऋग्वेद में उल्लेखित है '**अश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकं**' अर्थात् असुन्दर को सुन्दर स्वरूप में निर्मित करो। प्रकृति के अनेक तत्त्वों में सौन्दर्य की अधिष्ठात्री श्रीदेवी को अमूत रूप में देखकर उसे मूर्तरूप में गढ़ने का प्रयास किया है।

भारत में मूर्ति निर्माण का आरम्भ सिन्धु सभ्यता से हो चुका था। मूर्तिकला के विकास में मौर्यकाल से गुप्तकाल तक के इतिहास से ज्ञात होता है कि इस युग में तक्षणकला (शिल्पकला) अपनी चरमावस्था के साथ फलीभूत हुई। इसी क्रम में राजस्थान प्रदेश की तक्षणकला का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्राचीन कलात्मक शिल्प अवशेष तत्कालीन परिष्कृत कल्पना की परम्परा के द्योतक रहे। नवीन संस्कृति, शासक और परम्पराओं के साथ नवीन विचारों का प्रादुर्भाव हुआ जिसने एक नवीन शैली को जन्म दिया, जो 'कुषाण कला' अथवा 'मथुरा कला' के नाम से प्रसिद्ध हुई। कुषाण सम्राट कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव के शासनकाल में कुषाण कला का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव मथुरा में हुआ। लगभग 7 से 13वीं सदी में यह कला पराकाष्ठा को प्राप्त हुई। ब्रज मण्डल के सांस्कृतिक प्रभाव वाले क्षेत्र में अवस्थित होने से मूर्तिकला के उद्भव में पूर्वी राजस्थान ने विशिष्ठ भूमिका का निर्वाह किया। इस कला के आराधकों ने शिव, विष्णु, दुर्गा, कुबेर और सूर्य आदि के साथ-साथ बुद्ध एवं तीर्थंकर

मूर्तियों की भी समान रूप से रचना की। प्राचीन भारत के इतिहास से ज्ञात होता है कि आधुनिक ब्रजमण्डल क्षेत्र में 'शूरसेन' महाजनपद अवस्थित था। प्राचीन यूनानी लेखक एस राज्य को 'शूरसेनोई' कहते थे। वर्तमान में ब्रज मण्डल (क्षेत्र) की दिशाएं उत्तर में हरियाणा, दक्षिण में मध्यप्रदेश, पश्चिम में राजस्थान एवं पूर्व में उत्तर प्रदेश को छूती है।

राजस्थान प्रदेश के हृदय स्थल एवं प्राचीन नगर अजमेर में स्थित राजपूताना पुरातत्त्व संग्रहालय में अनेकानेक पुरा सामग्री के शिल्प संरक्षित है, जो क्षेत्र विशेष की कला के नवीन पक्ष को उजागर करने में सक्षम है। समयानुसार लेखिका ने उक्त संग्रहालय में जाकर वहाँ प्रदर्शित ब्रजमण्डल की मूर्तियों का जो शिल्पगत सामुख्य अध्ययन किया उसका विस्तृत शिल्पगत विवरण इस लेख का अभिष्ट है।

चित्र क्रमांक 1 चतुर्मुखी शिवलिंग—त्रिदेव के रूप में ब्रह्मा, विष्णु और महेश को प्रतिष्ठित किया गया है। भारतीय धर्म परम्परा में त्रिदेव को सृष्टि के उद्भव, पालन, संहार से सम्बन्धित उल्लेखित किया गया है। अजमेर संग्रहालय के संख्यांक 15/299वी पर प्रदर्शित दूधिया रक्त पाषाण का 10-11वीं शताब्दी का चतुर्मुखी शिवलिंग संरक्षित है। विवेच्य मूर्ति 143X57 से.मी. माप की है जो भरतपुर से अवाप्त है। उक्त चतुर्मुखी शिवलिंग में महादेव (शिव), सृष्टि पालक विष्णु, सृजनकर्ता ब्रह्मा एवं अंशुमाली सूर्य को शिल्पित किया गया है। उक्त चारों मूर्तियों के मध्य शिवलिंग को उत्कीर्ण किया गया है। विवेच्य शिवलिंग में अंकित चारों देव मूर्तियां अपने आयुध एवं आभूषण से सुसज्जित रूप में उकेरी गयी है। ब्रह्मा का मध्य मुख श्मश्रुयुक्त (दाढ़ी) है। सृष्टि पालक विष्णु अपने प्रतीक पद्म, चक्र, गदा के साथ अंकित हैं। विवेच्य मूर्ति में सूर्य किरीट मुकुट व उपानह धारण किये हुए शिल्पित है। सभी मूर्तियां स्थानकावस्था में चित्रित है।

प्राचीन वास्तु विद्या में विभिन्न देवों की मिश्रित (संयुक्त) मूर्तियों के लिए 'संधाट' शब्द का प्रयोग वर्णित है। सामान्य जन में इस प्रकार की देव मूर्तियों को संयुक्त या युग्म प्रतिमा के नाम से भी उल्लेखित किया जाता है। इस प्रकार की युग्म मूर्तियां सनातन धर्म में सहअस्तित्व एवं समन्वय के भाव को प्रकट करती हुई प्रतीत होती है।

चित्र क्रमांक 2 चतुर्मुखी शिवलिंग—संग्रहालय (अजमेर) के संख्यांक 16/302ए पर भरतपुर से ही प्राप्त मूर्ति चतुर्मुखी शिवलिंग हैं जिसका माप

लगभग 87.63 X 47.5 सेमी है। विवेच्य मिश्रित मूर्ति में शिव, विष्णु, प्रजापति ब्रह्मा एवं सूर्य को सुखासन, पद्मासन, ललितासन मुद्रा में उत्कीर्ण किया गया है। प्रजापति ब्रह्मा को त्रिमुखी एवं चतुर्बाहु रूप में उत्कीर्ण किया गया हैं उनके वाहन रूप में हंस का शिल्पांकन हैं। विष्णु के वाहन गरूड़ को मानवाकृति में श्रृंगारित, शिव महादेव को जटाजूटधारी, वाहन वृषभ (नन्दी) सहित एवं सूर्य देव को पूर्ण रूप से श्रृंगारित, सप्ताश्व रथ (रथारूढ़) स्वरूप में प्रदर्शित किया गया है। चतुर्मुखी शिवलिंग में उत्कीर्ण मूर्तियों में प्रभामण्डल का अंकन दृष्टव्य है।

रूद्र (शिव)—उक्त मूर्ति संग्रहालय के संख्यांक 9/257 पर अवस्थित है। उक्त मूर्ति का प्राप्ति स्थान कामां (भरतपुर) है। विवेच्य मूर्ति 27.94 X 38.01 से.मी. माप की एवं 10वीं शताब्दी की मान्य है। मूर्ति में शिव को जटाजूट से चित्रित किया गया है। वे कर्ण कुण्डल से विभूषित है। प्रथम दृष्टि में आभास होता है जैसे मूर्ति में केशों (जटा) को कंघी से संवारा गया है। विवेच्य मूर्तियों का भारतीय दर्शन की शिल्पगत दृष्टिगत दृष्टि से अध्ययन करे तो ज्ञात होता है कि उपर्युक्त मूर्तियां एकता में अनेकता की अभिव्यक्ति और अनेकता में एकता का दर्शन सिद्ध कर रही है। इस कला की मूर्ति निर्माण की दूसरी विशेषता मूर्तियों का आगे और पीछे दोनों ओर से शिल्पित किया जाना है।

जैन धर्म की आत्मा उसकी कला में प्रतिबिम्बित होती है। शास्त्रीय मान्यतानुसार जैन मूर्तियां केवल दो आसनों में निर्मित की जाती है। प्रथम कार्योत्सर्ग आसन जिसे खड्गासन भी कहते है तथा द्वितीय पद्मासन जो कहीं-कहीं पर्यंकासन रूप में भी उल्लेखित मिलती है। जैन शिल्पकला में सपरिकर अथवा अपरिकर शिल्पित करने का विधान है।

चित्र क्रमांक 3 तीर्थंकर मूर्ति—संग्रहालय में प्रदर्शित कटारा (भरतपुर) में अवाप्त तीर्थंकर महावीर स्वामी की चिकने दूधिया रक्त पाषाण की 88.9ह्न68.6 से.मी. माप की मूर्ति ध्यानावस्था की मुद्रा में है। विवेच्य मूर्ति का संग्रहालय संख्यांक 279/548 है। मूर्ति में ग्रीवा से शीश तक का भाग खण्डित है। पीठिका के दोनों छोरों पर द्विहस्त जैन शिल्प लक्षणों से युक्त यक्ष-यक्षी की मूर्तियां है। विवेच्य मूर्ति के वक्ष के मध्य श्रीवत्स का अंकन है। मूलनायक की पाद पीठिका के नीचे सिंह का चित्रांकन दृष्टव्य है, जो जिन मूर्ति के लाछन के रूप में उत्कीर्ण है।

राजस्थान के ऐतिहासिक, पुरातात्विक साक्ष्य अनेक सांस्कृतिक धाराओं के समागम के साक्षी है। राजस्थान ने न केवल अनेकानेक सांस्कृतिक धाराओं को अंगीकार किया बल्कि उसके पल्लवन और प्रसारण में योगदान भी दिया। इसी का परिणाम है कि मौर्य, शुंग, कुषाण एवं गुप्त शैली की कला का विकास राजस्थान में स्वतन्त्र रूप से फलीभूत हुआ जिसमें कला की मौलिकता एवं रचनात्मकता के दर्शन स्पष्ट दृष्टव्य है।

संदर्भ

1. अजमेर के पुरातत्त्व संग्रहालय में लेखिका के सामुख्य अध्ययन पर आधारित वर्णन।

❑

Miss Aditi Gaur
Research Scholar
C/o Mrs. Pushpa Sharma,
Sapunda Marg, Jyoti Colony
P.O.- Kekri- 305404
Ajmer (Raj.)
Mob. 8003365699

An Introduction to Archival Sources of South Eastern Rajasthan (*C.* 1672 - 1820)

● **Narayan Singh Rao**

The extraction of surplus by the rulers and the nature of relationship between peasant and the state was the central theme of all the major studies on agrarian history of the Mughal period prior to 1960. These studies often emphasized primarily on exploitative relationship between the producing classes and the ruling class. These studies were also largely based on court chronicles, account of foreign travelers and the administrative manuals, which seldom went beyond the limit of revenue administration and extraction of surplus produce. A major shortcoming of these studies as noted by historians working on archival sources is that vital issues such as caste formations, its impact on the structure of the rural society, the pattern of land holding and investment, role of menials, agricultural labourers and stratification in the village society etc. were largely ignored. The position and precise role of different sections in the rural society and the nature of administrative control on the forces of production and its impact on the economy of the state and the pattern of agrarian relations have also not been analysed adequately.[1]

With the publication of Irfan Habib's *Agrarian System of Mughal India* (1963 and 1999), our perception of the medieval Indian rural society underwent a fundamental change.[2] Subsequently our understanding of the medieval Indian rural society have been further enriched by the works of Satish Chandra[3], Nurul Hasan[4], B.R. Grover[5], Dilbagh Singh[6], S.P. Gupta[7], G.D. Sharma[8], Ghanshyam Devra[9] and B.L. Bhadani[10] who have utilized archival sources preserved in different repositories of the Rajasthan State Archives. The exhaustive studies conducted by the above scholars

have resulted in the shifting of the focus of historians from an individual to society and the masses.

From 1970 onwards there has been growing awareness among social and economic historians on the need for studying regional history with an emphasis on socio-economic and cultural aspects. In order to understand the nature and pace of developmental process in Indian society, it is crucial to analyse the regional patterns of growth and variations therein. Rajasthan is one of the region which is being studied extensively on the basis of a large mass of village and pargana documents preserved in Rajasthan State Archives, Bikaner, its branch offices at Kota, Udaipur, Jaipur, Jodhpur etc. B.L. Bhadani, Dilbagh Singh, S.P. Gupta, Ghanshyam Devra and G.D. Sharma were the pioneers to open-up and discover these archival sources and they also motivated a generation of scholars to use such valuable material and author of this paper is one among them.

The present paper aims at highlighting the important archival records which constitutes the core of our source material for construction of the socio-economic, political and cultural history of Hada states of Kota and Bundi referred to as Harauti or Harawati, the abode of Hadas comprised of three erstwhile princely states namely Kota, Bundi and Jhalawar.[11] This region was bounded on the north by the Jaipur and Tonk state, on the west by Mewar and on the south-west by Indore, Gwalior and Malwa states of Madhya Pradesh. Prior to the advent of Hadas this region was under the control of Bhils and Meena tribes until they were replaced by the Hadas in the early part of the 14th century.[12] Chambal was the principal river of this region. Its important tributaries were Kali Sindh, Choti Sindh, Parbati, Ahu, Sukhri, Banganga, Kul, Mej, Parwan, Ghar Ujahar and Banas. This region presented a transition between two major climatic zones of India, the humid east and arid west and hence it can be termed as semi-arid marked by extreme temperatures and great variability and uncertainty of rainfall. Highly fertile black soil occupied the entire region, which is rich in potash and lime. It is suitable for the cultivation of cotton, jowar, wheat, sugarcane, opium and gram.[13]

Thus comprising the most fertile tracts, the Harouti region is located in the south-eastern part of Rajasthan. The Hada state of Bundi was the nucleus of the region which came into existence

through a prolonged process of socio-economic developments in north India. The rulers of Bundi were the descendents of Shakambhari Chauhans. In 943 C.E., Lachman Ray or Lakhan the younger son of Wakpati Raj alias Manik Ray-I proceeded to Nadol laid foundation of a kingdom for himself. Later on after the defeat of Chauhans at the hands of Qutub-uddin Aibak one of the Chauhan general called Manik Ray-II migrated to south-eastern part of Mewar near Bambawada and Menal. Harraj or Hadorao was the sixth descendent of Manik Ray-II from whom this branch of the Chauhans derived the name Hara. In September 1342, Rao Dewa or Devi Singh, son of Bangdeo, tookover Bundi from the Meenas and forced them to acknowledge him as their overlord. Thus Rao Deva is regarded as the founder of the Bundi state.[14]

In 1569 C.E. Rao Surjan Hara surrendered the fort of Ranthambore and signed a treaty whereby he accepted the suzerainty of the Mughals. Upto the reign of Jahangir, Kota also formed part of Bundi state, and Rao Ratan and his son Madho Singh rendered valuable services to the empire in Deccan and also in suppressing the rebellion of prince Khurram. As a reward for his meritorious services, Rao Ratan was appointed as Governor of Burhanpur and his son Madho Singh received Kota along with territories yielding an annual revenue of 2 lakh rupees in 1625 C.E. In 1632 C.E. Madho Singh was formally recognized as the independent ruler of Kota by the emperor. The emperor granted him *Khilat* (robe of honour) and *mansab* of 3500 *zat* and 1500 *sawar* which was later on raised to 4500 *zat* and 2000 *sawar* along with tite of *Maharajadhiraj*. Thus the Maharao of Kota and Bundi were imperial mansabdars and the retained their respective state as *watan jagir*.[15]

A degree of political stability after the treaty of 1569 C.E. with the Mughals enabled the Hara states to reorganize the administrative structure of their *watan* and thus the Hada rulers did not remain in isolation from economic forces at work in India during the 17th century. This region was also connected with major trade routes of the medieval period. Strategically too, this region was located in the Indian heartland and hence the Mughals, Marathas, Pindaris and even the British rulers crisscrossed these states and tried to control Harouti region in order to further their interests.[16]

Harouti region as well as most of erstwhile princely states of Rajasthan are being studied extensively on the basis of a large mass of village, tappa, pargana documents. M.L.Sharma[17], M. Sato[18], Madhu Tandon[19], Shashi Devra[20], R.P. Shastri[21] B.L. Bhadani and several other scholars along with the author of this paper have used these records for construction of social, economic and gender studies. The Kota and Bundi records are just like a mine of data and information covering each and every sphere of historical research. Minute details are provided in these records starting with broader headlines, in nutshell, detailed information on the subject and finally tables and summary of data on revenue or any other economic aspect of history. *Chitthis, Talik Bahis* and all other categories of records also provide vital links and data, which are quite significant for construction of the history of the region. However, *Jamabandi*, *Arhsatta*, *Jamakharch*, *Khate Kashtkaran* and several other categories of records are very important with regard to the economic history of these twin Hara Sates.[22]

The Rajasthan State Archives, Bikaner and its district record offices at Kota and Bundi preserve these records. The records are available to scholars for consultation. The details about some of the important category of records consulted by the author of this paper since 1986 at Kota and Bikaner are as follows -

Arhsatta Records : These are very significant and useful source for the study of rural economy, structure and stratification of village society, agrarian taxation, agricultural production, village administration, nature of relationship between the state and the *karshas*, rural credit, merchants and traders, common financial pool of the village community and ploughs operating in the villages. These records were introduced by the state in the later part of 18th century as a substitute of *jamabandi* record after 1840 VS/1783 C.E. onwards. During this period efforts were made by the Maharao of Kota and Bundi to phase out *batai* (crop sharing) as a method of assessment and introduce zabti rates for all categories of crops raised and soil cultivated by the *Karisha*. A document of 1819 VS/1762 CE referred to as Arhsatta *Mauza Hindoli Tappa Barod Ki Agotri Kholdi Ko* gives information that in Hindoli, there were 109 Mali Asamis belonging to about 12 different gotras of Mali caste, 4 Mahajans, 9 Brahmins, 4 Rajputs, 5 Jogis, 10 Khatis, 8 Gujar, 6 Jat, 1 Nai, 1 Teli, 1 Balahi, 3 Turks and 4 Meers. They paid Rs. 654.60

towards the *Kholdi* tax. Besides this there were 61 Keer, 18 Chhinpa, 20 Kumhar, 24 Bola, Banjara 2, Lakhara 1, 2 Khatik, 5 Kalal, 3 Suthar, 3 Darji and 11 Julaha. The total number of asamis comes at 150. They were separately assessed and total amount of Kholdi tax on these 150 households comes at 1487.35. This village also had plenty of cultivable land cultivated in the *kharif* season. The net assessed amount of revenue in 1820 VS came at Rs. 1224.50.[23]

Another document pertaining to 1864 VS/ CE1807 entitled Arhsatta Mauza Khajuri Tappa Aradhkhedo gives details about assessed income of revenue from this mauza in CE 1807 amounting to Rs. 8106, out of which Rs. 5554.60 was to be realized from *mall hasil* (land revenue) Rs. 2552.30 from cesses and Rs. 17.5 from *jamdari* tax. The document further inform us that there was 7494 bigha of total land in the village, out of which 2441.25 bigha was Nalaike (uncultivable), 75.35 bigha was allotted to local priests in *dohli* (land grant) and 45.50 bigha of land was assigned to dharti ke chakar in chakari grant. This document also contains details on the different categories of land cultivated by the *karshas*. These include *peeval* (irrigated), *gorvon*, *mall bido, parat, bagait* etc. The total area cultivated by the *karshas* came at 4310 bigha which yielded Rs. 7606. Out of which Rs. 5073 was *asli mall* (land revenue) and Rs. 2534 as the amount of cesses (*barrars*). The Adsatto document also gives details on miscellaneous taxes such as *sair, kholdi, jamdari, datli, balahi ka salina ko, dohli ki ghughri*, taxes on gardens and orchards.[24]

The Arhsatta records were also prepared for a group of villages incorporated in a tappa or pargana. But it was not a general practice. The Arhsatta tappa Siswali document collected from district record office Kota pertaining to 1845 VS/CE 1788 gives data on cultivable land and cropping pattern and area covered by each crop along with revenue rate per bigha and total revenue demand for Qasba Siswali, Mauza Dorli, Kankro, Patpado, Saipuro, Kudalo, Khenadi, Kunso, Nawalpuro, Bhatedi, Jalodo Sahipuro (of pargana Barod), Pakla Khedi, Sonwo, Delyahedi and Nanyo. Thus this document gives comprehensive details about income from land revenue, sair taxes, kholdi (house tax), sale of food grain and other products to traders which were collected from the *karshas* in lieu of taxes for 16 villages of this tappa. The details on *halis*, working

for village society, common financial pool of the villages (Melni), local village officials, movement of merchants and traders in the villages, sale of fodder, borrowing from the Vohras by the Maharao and arrangement for repayment of this loan, disbursement of salaries to local staff, purchasing of cloth and other items for the Maharao and expenses incurred by the state under different heads in that area/village and prices of crop products is also mentioned in the adsatta documents.[25]

However, the arhsatta document suffers from several limitations and one has to take note of these shortcomings while planning to undertake studies on any aspect of the economic history. Firstly, these records are available only from VS 1820 /CE 1763 onwards. Therefore, we need to use *jamabandi* records for the earlier period. Secondly, these records do not have any uniform pattern. In some cases these are available for a *pargana* and at some where on tappa and mostly village/mauza wise. Due to split of records in Bikaner and Kota a scholar needs to consult records at both the places. These records mainly provide data on taxation, extent of agriculture, collection and management of revenue resources and functioning of village society. The other aspects are not covered by these records.

Jamabandi : These are village level records. which offer valuable information about total area (chak) of the village and land allotted to *karshas*, priests, servants of the state and hereditary village officials. Area cultivated during *rabi* and *kharif* or *unhalu* and *siyalu* crop seasons. These documents give data on total assessed revenue by the state as *asli mal* and *sair* taxes. Per bigha revenue rates for *kharif* and *rabi* crops in respect of zabti crops and *diwani* (state) and *raiyati* (share of the *karshas*) from the crops assessed by the *bhavali* (crop sharing) method of assessment is separately mentioned in these records out of the total production from a plot. The total revenue to be collected from a village and the proportion of *sair* taxes as a part of the total revenue demand is also provided so that one can workout the amount of land revenue to be remitted to the central exchequer and the cost of the assessment and collection of revenue. The Jamabandi documents are available from VS 1730/CE 1673 in Kota state covering the period from the reign of Maharao Jagat Singh of Kota and onwards. These records for each mauza are available upto VS

1820/CE 1763. In the subsequent period of course, these document are available for few villages but with the introduction of Arhsatta records, the *Jamabandi* records were discontinued by the state authorities in gradual manner so as to save the cost of administration.

For conducting historical study of the Hada state with special reference to economic and administrative aspects one is bound to consult *jamabandi* records. In this regard the *jamabandi* records of pargana kudi in Bhandar No. 1 of Rajasthan State Archives, Bikaner needs to be mentioned as these records give us data on agrarian economy of the Kota state corresponding the period of Aurangzeb. *Jamabandi Mauza Hanuhedo* VS 1730/CE 1673 informs us about the sale prices of jowar, mung, urd, till etc. per mauni. And it also gives data on crops raised by *karshas* in 46.35 bigha of land which included maize, bajra, san, *mall* and tobacco yielding Rs. 32.80 to the state exchequer. These crops were assessed by zabti system. The document further gives information that Jowar, Mung, Urd, and til crops were assessed through *batai* or *bhavali* system. Of the total yield of 72 *mauni* the state collected 32 *mauni* from the *karshas* as land revenue tax, which comes at 44.45 percent of the total crop production. Similar information is available in jamabandi documents of 1673 CE regarding mauza Imratkhedi, Lalahedi, Nivodo, Hanotkhedo, Kewai, Hedo, Padoloy, Tingari and other villages.[26]

Jamabandi document of mauza Mudhak VS 1773/CE 1716 gives interesting data starting with total area of the mauza which was 3500 bighas and the total revenue collected in cash from this mauza was Rs. 2901 whereas Rs. 1151 were realized by sale of foodgrain etc. collected from the *karshas* in lieu of land tax. Maize, *gardi*, *van* (cotton), *Varh* (sugarcane) were the major crops cultivated by the *karshas* in 122.3 bighas of land during the *kharif* season. These crops yielded Rs. 338.60 to the state exchequer as land revenue. Besides this the state assessed *jowar, mung, til, urd* crop through *batai*. The total produce from these crops was measured 76.80 *mauni* as land tax which comes at 37.50 percent of the total production. The document also gives a list of *sair* taxes realized in *nagudi* and *jinsi* which include *neg, kanwar matki, dhaibhomi, baje khuchi, kamini* etc. At the end summary of income from land revenue (*mal*) and *sair* taxes is given which is

referred to as teriz. Similarly data on *rabi* crop season is also given which include prices of important food crops per mauni, sale of food grain by the state from the granary amounting to 112.75 mauni and receipt of Rs. 1126.35 from this sale. It also mentions zabti rates for *rabi* crops such as *seko, aph* and vegetables raised in 46.80 bighas of land that yielded Rs. 128.60 to state exchequer. The wheat gram and alsi crops were assessed by the state in *batai/ bhavali* method of assessment and out of 228.50 *mauni* the state collected 71.60 *mauni* from the *karshas* as land revenue or states share which comes at 31.10 percent of the total produce.[27] Jamabandi document of mauza Rangpur for the year VS 1771/ CE1714 informs us that the total area of the village (chak) was 4901 bighas out of which 150 bighas was allotted to recipients of land free grant and 4751 bighas was under the possession of the *karshas*. The state realised Rs. 4253.75 as land revenue out of which 911.35 were collected in cash and rest of the amount was realized in kind. The document also gives data on prices of the major crop products prevailing in that area. During the *kharif* crop season the *karshas* cultivated 264.75 bighas of land in which cotton, tobacco, *kardi, san, jowar, Bajra, til*, and *rallo* crops were raised. These crops yielded Rs. 411.35 as land revenue to the state. Apart from this the state assessed jowar, mung, moth, bajra and til crop in *batai/bhavali* system too. Out of the total crop production of 197 *mauni*, the state collected 78.90 *mauni* of crop produce as state's shares or land tax. The document also gives the details on amount of sair taxes such as *neg, dhaiji, bhomi, dhaibhaiji, kamini, mapo* etc. and an abstract of *mall* and *sair* taxes is given in a table (teriz). Food grain and agricultural products sold by the state to different traders, merchants etc. from this village is also mentioned along with price/rate per *mauni* during the *rabi* season. The document further inform us that the total cropped area during the *rabi* season under *zabti* system was 85.50 bighas in which *seko*, onion, tobacco, vegetables, muskmelon, brinzles etc. were raised by the *karshas*. These crops yielded Rs. 157 to the state exchequer. But crops such as wheat, gram, *alsi, arhar, masur, gojai,* barley, *dhano, vatlo* etc. were assessed through *batai/latai*. Out of the total produce amounting to 444.85 *mauni*, the state collected 162 *mauni* from the *karshas* as the land revenue. The amount of sair taxes is also mentioned which was collected from

the people of that mauza.[28] Information regarding agricultural credit is also available in some of the Jamabandi records.

Thus *Jamabandi* documents pertaining to different villages or mauzas for different years give us a very clear picture on agrarian system, rural taxation, trade and commerce and structure and functioning of the village society from early part of 17th century to the 19th century with special reference to the Hada states of Kota and Bundi. These documents would also enable the scholars to make an attempt to compare the Hada system of land revenue administration or economy to that of the Mughals as we have Jamabandi records corresponding the period of Aurangzeb.

Jhada : These documents are of great significance for conducting research on economic history of the Hada states of Kota and Bundi. However, these records were compiled in later period starting from VS 1840/CE 1783 onwards. The Jhada documents are a kind of abstract or summary of statistics on income and expenditure in a pargana, revenue collection related data on *kharif* and *rabi*, ploughs operated by different categories of cultivators, cultivation of land in state farms, employment of *halis* by the state and landlords. Prices of agricultural products/food grain, amount realised from *sair* taxes, farming out of the task of tax collection, sale of food grain by the state to merchants, tax on *dohli* land, *jamdari* tax on *halis*, taxes collected from *Thalad Asami* such as carpenter, ironsmith, potter, barber, wine seller, washerman, etc who belonged to artisnal communities referred to as *kamins*. Sale and purchase of cattle, agricultural credit system and agrarian trade related data is also given in this Jhado document.

A Jhado document of pargana Barsana pertaining to 1856 VS/ CE 1799 collected from District State Archives, Kota informs us that there was an arrear of Rs. 1335 to be recovered from the *karshas*. The Kota State granted a loan of Rs. 80.35 to the *karshas*. Dues to be recovered from Patel, *Patwari, Balahi, Sansri* is also mentioned which comes at Rs. 55.50. We are informed that food grain worth Rs. 1123.20 was sold by the state. There were Rs. 44.70 still left with *karshas* as the dues in cash as well as kind. Jhado document also mentions that in the *rabi* season cotton, maize, jowar, tobacco, *mall* (millet), vegetables etc. were the major crops raised by the *karshas.* These crops yielded Rs. 2668 to the state exchequer. Details about miscellaneous taxes, fine imposed on

persons violating customary law, indulging in crimes, such as theft, sex related crime are also given. Comprehensive data on sale of food grain from state granary to different merchants, traders, mahajans is mentioned along with sale price. List of merchants operating in the pargana and food grain purchased by them from the state is also given. Similar details about *rabi* crop is given. A list of *Karshas* operating or possessing ploughs is also given along with their castes. Jhado document gives very interesting data on trade and commerce which was flourishing in the Hadouti region at that time. The document also gives list of *karshas* who were given loan or taqavi for purchasing bullocks and other essential equipments. The amount of loan varied from Rs. 1.25 to Rs. 16.25 given to *karshas* and total amount of agricultural credit extended to the *karshas* was calculated at Rs. 162.00 which is quite substantial in view of the prevailing prices. Document also mentions that another Rs. 20.35 were given to the *karshas* to purchase seeds and bullocks on credit. To help the *karshas* state also provided to them food grain of Rs. 588.75 on credit through *vadi* system so as to tide over the difficult time and return the food grain borrowed from the state with an additional amount ranging from 25 to 50 percent as *vadi.* Interestingly the *Jhado* document also mentions that the state participated in trade of grass and fodder consumed by cattle. *Pulas* (bundles) of grass (*ghas*) were sold to *karshas* of different villages. In Rs. 1 a *Karsha* could buy 1400 bundles of the *ghas* (grass). There were systematically arranged and managed godowns controlled by pargana officials. The state earned Rs. 27.6 by selling bundles of grass in pargana Barsana in VS 1856/CE 1799. There were depots or godowns of *ghas* referred to as *vagar ghas*. The availability of grass or fodder must have contributed significantly towards the growth of dairy industry and cattle wealth in the Hadouti region. The Jhada documents of mauza Jolpo, pargana Barsana, Tappa Barod give data on wide ranging economic activities, agrarian taxation and participation of state in trade and commercial activities during the pre-colonial Harouti region. Any scholar who is working on economic history of this region must consult these records.[29]

Khate Kashtkaran : In order to enhance the revenue collection and effectively monitor crop production the rulers of Kota and Bundi state carried out a series of experiments to stop leakage or withholding of taxes by the *karshas* in league with the

local revenue officials. The state prepared account book or folio for each of the *kashtkar* (cultivator) or *asami* in a village. Initially the Kota state officials used to prepare a list of *asamis* along with the size of their land holding in a village. This list is helpful to a scholar to understand and know the resource position of *karshas* belonging to higher, middle and lower caste peasants. A khate kashtkaran document of mauza Dhori pertaining to VS 1745/CE 1688 gives information that there were 56 *karshas* in a village, out of which 3 possessed land 150 bighas and above, 2 possessed land between 100-150 bighas, 12 *karshas* held land between 50 to 99 bighas, 21 possessed land between 26 to 50 bighas, 7 between 16 to 25 and 10 *karshas* possessed land which was less than 15 bighas. The list of *karshas* include even the cultivators belonging to lower and middle castes. With the passage of time the Khate Kashtkaran document become more comprehensive and perfect and contained two columns just like a ledger book in which leftside was used to mention total assessed revenue demand by the state from a Karsha, land/plots cultivated by him with details about crops grown in each plot and revenue rates, area and total amount of land tax. On the right side of the *Khata* (page) the amount paid by a *karsha*/realised by the state in different installments was recorded along with dates. A *karsha* was allowed to supply food grain, cash, milk or any other item required by the state and cost of that was credited against his revenue demand. There was lot of flexibility with regard to revenue collection as a *karsha* was given freedom to pay the revenue demand in several installments in a year. He was also granted remissions and agricultural credit (taquavi loan) by recording the same in the *Khata Kashtkaran* for the purpose of recovery or adjustment. A substantial percentage of revenue was left as unrecovered (baqi) and carried forward to the account book of next year. This shows that Maharao of Kota and Bundi were quite liberal towards the peasants. They did not resort to coercive action such as eviction of the *karshas* or confiscation of their property so as to ensure the *vasuli* of the dues from the *karshas*.[30]

A *Khato Qasba Barod Ko* document VS 1867/CE 1810 shows that a patel *Karsha* cultivated 694.35 bighas of land and his assessed amount of jama (revenue) was Rs. 994.85, but he could pay only Rs. 821.10 and that too in kind in different installments. Similarly *Khato Gujar Sewa Ko* inform us that he posed 73.4 bighas

of land in this Qasba and his net assessed revenue was Rs. 145.35. But he could pay Rs. 6.35 in cash on Falgun Sudi 11, he also supplied jowar for Rs. 22.50 to the state and wheat for Rs. 31.85, ghas (grass) for Rs. 2.25, and Alsi for Rs. 1.35, Rs. 18.60 were paid by Vohra Kriparam on his behalf to the state. Thus he could pay only 82.90 against the revenue demand of Rs. 145.35 worked out by the state. Khato Patel Rama s/o Vakhta Ko inform us that he possessed 243.10 bighas of land in the Qasba and his net assessed revenue (jama) for 1867 VS was Rs. 207.00 and dues of the last year were Rs. 198.25. Thus he was required to pay Rs. 405.25 in this year. But he paid only 230.10 and Rs. 175.19 were left as arrears to be recovered in the next year. In this Khata a Karsha called Ahir Bhopo was required to pay Rs. 135.35 towards the revenue demand but he did not pay anything. Khato Ahir Kushala shows that against the revenue demand of Rs. 141.75 he could pay only 19.60 and Rs. 22.15 were left as baqi. But Babo Vaje Das could meet the entire amount of revenue demand. Kalal Shiva also paid the entire amount of revenue demand amounting to Rs. 6.70. Bakshi Miyaram paid Rs. 11.35, Miya Salari paid Rs. 10.75 against the revenue demand of Rs. 104. Interestingly a chamar asami could pay Rs. 1.85 which was the total amount of his revenue demand. In the similar vein big or well-to-do cultivators by and large failed to meet the full revenue demand of the state whereas small *khatedars* were successful in meeting the revenue demand of the state in total.[31]

Thus Khate Kashtkaran document gives us highly interesting and valuable information for studying the nature of relationship between the state and the peasants, the economic condition of the *karshas*, type of soil cultivated and number and type of crops raised by the *karshas* along with the area in bigha possessed by them.

Taskaro Mapai : This is an important document which is prepared on the basis of the survey conducted by the revenue officials when sowing season of the crops is over and crops have grown up sufficiently. The data of the survey were used to prepare the Taskaro Mapai on the basis of which revenue demand was projected in Jamabandi records. This record mentions total area of a particular category of land cultivated by a Karsha, crops sown in that plot, condition of the standing crop i.e., good, bad, average or half so that revenue rates per bigha can be worked out by the state.

This document also mentions that the area or plot is irrigated or unirrigated. The names given by the *karshas* for each plot are also mentioned/recorded in this document. These documents were introduced in VS 1864/CE 1807 and onwards when a fresh revenue settlement was effected by overhauling the administrative machinery of the revenue department of the Kota state. The document mentions the members of the survey team and different type of land such as *nalayak, dohli, chakari ki dharti* and also earmarked for *sarkar ka hawala*. Taskaro Mapai document pertaining to mauza Bhanwaro in Tappa Dighod mentions that out of the total 3206.75 bighas of land the *karshas* cultivated 1871 bigha in *rabi* crop season and only 194.35 bighas in the *kharif* season. Plots were also divided into different categories on the basis of the fertility of the soil such as *khedo, gormo, sarmall, chapper, parat beejmarr, doli, khall, khadara, nalayak, bido, peeval, vana peeval* etc. The condition of the standing crop is recorded as *sakh chokhi* (average), *sakh adhi* (half portion of the crops has only survived), *sakh bodi* (poor) etc. so that revenue rates can be worked out in accordance with the condition of the standing crop. Against the each plot of land it's area and crop sown is mentioned. Jowar, wheat, sud and other crops raised in a plot is recorded systematically in these records. Thus Taskaro Mapai is an important document for the study of the agrarian system of the Hada states of Kota and Bundi.[32]

Though there are many other documents/records pertaining to Hada states in the State Archives of Bikaner and Kota. But due to paucity of space it will not be advisable to mention theme all. These records are prepared in Harouti script considered as the most typical one among all the Rajasthani scripts. However, with persistent efforts one can acquire the understanding of this script in a very short time. We must be also be frank enough to be aware about the limitations from which these records suffer. Firstly these records are not available in a time series and there are gaps/intervals in availability of these records. Secondly, with passage of time the nomenclature of these records also changed. Jamabandi records lost into oblivion when Arhsatta records were introduced in VS 1864. Subsequently Jhado and Khate Kashtkaran documents became more prominent during the regency of Jhala Jhalim Singh. Thirdly, records were sometime prepared at pargana level and

sometime at mauza and tappa level and hence we cannot compile pargana-wise statistics on movement of prices, revenue rates, *batai*, income and expenses of a pargana and fluctuating or increase or decrease of the same. This hampers our efforts to conduct a comparative study of the socio-economic conditions prevailing in different parganas of the twin Hada states of Rajasthan.

References :

1. Moreland, W.H., *Agrarian System of Muslim India,* Cambridge, 1929, Reprint Allahabad.
2. Habib, Irfan, *The Agrarian System of Mughal India,* Bombay, 1962.
3. Chandra, Satish, *Medieval India, Society, The Jagirdari Crisis and the Village Society,* Delhi, 1982.
4. Hasan, S.N., *Thoughts on Agrarian Relations in Medieval India*, Delhi, 1971.
5. Grover, B.R., *Nature of Land Rights in Mughal India*, IESHR, Vol. I, 1963. Also see., "Nature of Dehat-i-taaluqa (Zamindari village) and the Evolution of the Taaluqadari System During the Mughal Age", IESHR, Vol. II, 1965.
6. Singh, Dilbagh, *The State Landlord and Peasants of the Eastern Rajasthan* in the 18th Century, Delhi, 1990.
7. Gupta, S.P., *Agrarian System of Eastern Rajasthan*, Delhi, 1982.
8. Sharma, G.D., *The Rajput Polity*, Delhi, 1977.
9. Devra, G.S.L., *Rajasthan Ki Prashasnik Vyavashta, 1868-1818 A.D.*, Bikaner, 1981.
10. Bhadani, B.L., *Peasants, Artisans and Entrepreneurs, Economy of Marwar in the 17th Century,* Jaipur, 1999.
11. Tod, James, *Annals and Antiquities of Rajasthan*, Vol. II, Reprint New Delhi, 1971.
12. Sharma, M.L., *Kota Rajya Ka Itihas*, Vol. I, Kota, 1939, p. 52-60.
13. Singh, R.L., *India - A Regional Geography,* Varanasi, 1971, p. 517-64.
14. Sharma, M.L., *Kota Rajya Ka Itihas*, Vol.-I, Kota, 1939, pp. 57-60.
15. Rao, N.S., *Rural Economy and Society - Study of South Eastern Rajasthan During the Eighteenth Century,* Jaipur, 2002, pp. 24-41.
16. Ibid.
17. Sharma, M.L., *Kota Rajya Ka Itihas*, Vol. I-II, Kota, 1939.
18. Sato, M. and Bhadani, B.L., *Economy and Polity of Rajasthan*, Jaipur, 1997.

19. Tandan, Madhu, Sethia, *Rajput Polity Warriors Peasants and Merchants,* Jaipur/New Delhi, 2003.
20. Shastri, R.P., *Jhala Zalim Singh*, Jaipur, 1971.
21. Shashi, Deora, Rajasthan Mein Nari Ki Sthiti, Bikaner, 1981.
22. Rao, N.S., Op. cit., pp. 21-24, 357-65.
23. RSA-BR *Arhsatta Mauza Hindoli Tappa Barod*, vs 1819-20.
24. DSA-KR *Dusri Manzil,* Basta No. 338, Arhsatta Mauza Khajuri, 1864 VS.
25. Ibid, Basta No. 41, *Arhsatta Tappa Siswali Fasal Kharif Ki Zapti Ko*, 1845 VS.
26. RSA-KR, Bhandar No. 1, Basta No. 2, Jamabandi, Mauza Hanuhedo, Imratkhedi, Lalaheri, Nivodo, Padolyo, Tingari and Other Mauzas, VS 1730/CE 1673.
27. Ibid. Basta No. 31, *Jamabandi Mauza Mudhak, Pargana Ghati,* VS 1773
28. DSA-KR, Dusri Manzil, Basta No. 276, *Jamabandi Mauza Rangpur Ki,* VS 1771/CE 1714.
29. Ibid, Basta No. 41, *Jhado Pargana Barsana Ko*, VS 1856/CE 1799. *Jhado Qasba Jolpa Ko*, 1855 VS/CE 1798, *Jhado Tappa Barod Ko*, 1856 VS
30. Ibid, Basta No. 6, *Khata Kashtkaran Mauza Dhori*, VS 1745/CE 1688.
31. DSA-KR, Dusri Manzil, Basta No. 337, *Khata Qasba Barod Ka*, VS 1867/CE 1810.
32. Ibid, Basta No. 366, *Taskaro Mapai Mauza Chavadhedi, Daulatpuro, Pargana Barod*, Basta No. 239, *Taskaro Mapai Mauza Bardano, Tappa Atru,* Basta No. 310, *Mauza Bhanwaro, Tappa Dighod*, VS 1864/CE 1807.

❑

Prof. Narayan Singh Rao
Head of the Department of History
and Dean of Social Sciences
Maharaja Ganga Singh University,
Bikaner (Raj.)
Mob. 9828560739
Email : raonarayan2005@gmail.com

Heritage and Cultural Tourism: Religio-Cultural Route from Agra to Ajmer in Mughal India

• **Dr. Nusrat Yasmeen***

The study of routes is an important aspect of the historical geography. Routes were developed for travelling and the significance of routes is seen from the point of view of trade, commerce and governance. This can be seen from Joseph E. *Schwartzberg*'s-*A Historical Atlas of South Asia* and Irfan Habib's-*An Atlas of the Mughal Empire*. These maps are important from political and economic point of view but these routes also have a great deal of socio-cultural significance. Thus in this paper, I shall concentrate here on this route from the socio-cultural point of view. To understand the socio-cultural significance of the route, I have selected to study the route, spanning from Agra to Ajmer. This route carries religio-cultural significance owing to the dargah (shrine) of Khwaja Moinuddin Chishti and Pushkar. These spiritual routes also the fact of presence of mass tourism in pre-modern India Travellers who travelled for commercial interests left with variety of socio-cultural experiences in their travelogues.

The experiences related to environment, wildlife, accommodation and hospitality are the matters of our interest from tourism point of view. For this we should see the route which travelotourists followed during the course of their journey. Though generally, the Mughal emperors are brief and do not provide details of the aspects indicated above but travelotourists furnish interesting information on the above subject.

On the basis of the information contained in the sources, we have drawn routes. The history of places on the route as indicated by the

* I am indebted to my teachers Prof. S. Inayat Ali Zaidi and Sunita Zaidi for their immense help and guidance in writing this paper.

chronicles and travellers has been discussed. On this basis two distinct routes emerged; begins from Agra to Ajmer. One route is indicated by Abul Fazl. He mentions the following sixteen stages of journey:

1. Midhakur
2. Fatehpur Sikri
3. Passed Khanwa and hatled near Juna
4. Karoha
5. Bhusawar
6. Toda (Todabhim)
7. Kalawali
8. Kharandi
9. Dausa
10. Passed Hansmahal
11. Sanganer
12. Near Neota
13. Jhak near Mozamabad
14. Sakhun
15. Kajbil
16. Ajmer

Nearly fourteen stages have been spotted (see appended map). This route was followed by Akbar when he first time visited Ajmer. First time Akbar came to know about the popularity of the Khwaja in the common masses when he heard a folk song singing by minstrels in praise of the saint. In Abul Fazl's words, "His Majesty went off to Fathpur to hunt and passed near by Mandhakar which is a village on the way from Agra to Fathpur. A number of Indian minstrels were singing enchanting ditties about the glories and virtues of the great Khwaja, Khwaja M'uinu-d-din, may his grave be hallowed ! who sleeps in Hazrat Ajmer. Often had his perfections and miracles been the theme of discourse in the holy assemblies. His Majesty who was a seeker after Truth and who in his zealous quests sought for union with travellers on the road of holiness, and showed a desire for enlightenment, conceived a strong inclination to visit the Khwaja's shrine. The attractions of a pilgrimage thither seized his collar."[1] In this background, with the blessing of Shaikh Salim Chishti, when prince Salim borne he decided to pay homage to the dargah of Shaikh Moinuddin Chishti. He (Akbar) went there as mark of thanks giving to Khwaja Moinuddin Chishti. Abul Fazl writes, "at the time when he

was seeking for a son, had made a vow to his God that if this blessing should be attained, he would perform an act of thanking which should be personal to him, viz, that he would walk from Agra to the shrine of Khwaja Moinuddin Chishti, and there pay his devotion to God."[2] The visit was fixed when the *urs (death anniversary)* of the saint was celebrated. As per Abul Fazl's statement, "Each day he (Akbar) journeyed ten or twelve *kos*, less or more."[3]

As mark of devotion, Akbar journeyed on foot from Agra to Ajmer. He straight way went to the shrine and placed the forehead of sincerity on that spot and implored help. He stayed there several days and distributed gifts among the attendants of the shrine. Abul Fazl refers a quarrel among the attendants of the shrine for the division of the large gifts. When the superintend of the shrine Shaikh Husain claiming the descendant of the Khwaja took possession of the whole of the money, other attendants objected and challenged the descendant of the Khwaja. They challenged him to be false descendant and the other claimant of the Khwaja's real descendants. Akbar set up an enquiry by persons of impeccable character. As per enquiry report Shaikh Husain claimed 'sonship'. Thus the charge of the shrine was changed to Shaikh Muhammad Bukhari who was in Abul Fazl's word, "distinguished among the Sayids of Hindustan for knowledge and fidelity."[4]

Akbar seems have constituted management committee for looking after the *dargah*. He also asked the committee for making arrangement for the pilgrims. He also assigned the committee to construct the mosque and *khanqahs* in Ajmer. Hence, Ajmer received special attention of the highest sovereign authority of Mughal India.[5]

An interesting information provided by Palsaert who calls Khwaja Moinuddin Chishti as Pir Ghazi Muinuddin which he seems to have heard from the masses and the Khwaja was also known as Pir Ghazi. Further he writes that pilgrims made journeys from distant places and particularly those who were childless. In addition to the *kosminar* with a well he also built *mahals* for women at every eight *kos*.[6]

Thevenot says that the famous Khwaja Moinuddin who was in reputation of sanctity amongst the 'Mahometans', was reverence at Ajmer, and from all parts of, they come in pilgrimage to his tomb. It is a pretty fair building. Further, Thevenot gives a good account of the premises with the reference of different structures.[7]

Routes given by Joannes De Laet and Peter Mundy are largely similar but different to Akbar's pilgrimage route. On their route all those destinations which are important from commercial point of view, are

situated. For instance Akbar did not take the route of Bayana while Perter Mundy did because Bayana was famous for high quality of indigo.

Emperor Jahangir also furnishes interesting information while he started his journey from Agra to Ajmer. He says that just after leaving Agra, he alighted at the *Darah* garden. There he stayed for eight days and also celebrated *Dushera* festival.[8]

In the *Tuzuk-i Jahangiri,* there is a description of *Shab-i Barat.*[9] On this occasion Emperor Jahangir ordered to light lamps around the hills near *Anasagar* as well as its banks which looked very beautiful. He has expressed that "I passed the most of that night with the ladies of mahal on the bank of that tank."[10]

On his journey from Agra to Ajmer, Peter Mundy has also provided interesting information when he halted three *kos* after Chatsu. Bakir Khan who was accompanying Peter Mundy solemnised the *Nouroze* festival.[11] There was magnificent celebration by beating the *drums* of silver and trumpets of gold. Apart from this, there was a fighting of camels and in afternoon there was feasting together of the chiefs and their followers. At night the area was lightened for the celebration of the feast of the New Year.

Emperor Akbar is known for his reputation and determination for hunting .He made an expedition in January 1562 and set off to Ajmer with few attendants who belonged to the hunting party. The Emperor also issued an order that Maham Anaga to convey the *harem* to Ajmer via Mewat. On this cultural route mention is also made of the place Kalavali (Karauli).[12] In 1569, Akbar again went to Ajmer and every day enjoyed hunting there till long as well as paid his respect to the *dargah* of Khwaja Moinuddin Chishti as well as scattered coins into the skirts of the attendants. He stayed there for a week and every day visited the shrine. In fact, the Mughal Emperors' religious journey to Ajmer was also associated with leisure and pleasure of hunting tourism. Emperor Jahangir says that it was the season for travelling and hunting. He left Agra and encamped in the Darah garden and stayed there for four days and next he stayed at Rup Bas and sojourned there for eleven days and in his own words, "As it is a fixed hunting place, I every day mounted to go hunting, and in these few days 158 antelopes, male and female, and other animals were killed."[13] Further Jahangir says that he proceeded towards Pushkar and hunted two tigers.

In addition to the visits of places, the hunting activities represent rich wild life information. Jahangir himself mentioned in *Tuzuk-i Jahangiri* "I visited Ajmer nine times the mausoleum of the revered Khwaja, and fifteen times went to look at Pushkar lake: to the Chashma-i Nur I went thirty eight times. I went out to hunt tigers, etc., fifty times. I killed 15 tigers, 1 cheetah, 1 black-ear (lynx), 53 nilgaw, 33 gazelle (gawazn), 90 antelope, 80 boars and 340 water fowl."[14] From the heritage and cultural tourism point of view it is interesting to see how in medieval India certain places were identified to develop as a resort. When Jahangir was in Ajmer he identify the place and thought it fit as a unique resort. He described, "There is a ravine in the neighbourhood of Ajmer that is beautiful. At the end of this ravine a spring appears which is collected in a long and broad tank, and is the best water in Ajmer. This valley and spring are well known as Hafiz Jamal. When I crossed over to this place I ordered a suitable building to be mad there, as the place was good and fit for developing. In the course of a year a house and grounds were *made there, the like of which those who travel round the world connot point out.* They made a basin 40 *gaz* by 40, and made the water of the spring rise up in the basin by a fountain. The fountain leaps up 10 or 12 *gaz.* Buildings are laid on the edge of this basin, and in the same way above, where the tank and fountain are, they have made agreeable places and enchanting halls and resting rooms pleasant to the senses. These have been constructed and finished off in a masterly style by skilled painters and clever artists. As I desired that it should be called by a name connected with my august name, I gave it the name of *chashma-i Nur* or the fountain of light. In short, the one fault it has is this, that it ought to have been in a large city, or at a place by which men frequently pass. From the day on which it was completed I have often passed Thursdays and Fridays there".

For the staying facility of the travelotourist, accommodation and hospitality *sarais* were constructed by the state. When Sher Shah Suri built *sarais* at every *kroh* on the highways in his empire, he also erected road and *sarais* from Jaunpur to Bayana and Ajmer. In the *sarais* some inherited cultural amenities were provided by him. Earthen jars were placed separately for the Muslims and Hindus at the gate of each *sarai*. He built a mosque; a house for king and well, as well as an Imam and a Moazzin were appointed at every mosque while Shiqqdar was posted as incharge of the *sarai.* Corpus fund was created for the maintenance and management of the *sarai.* For this, he allotted them revenue yielding

lands for their maintenance. These *sarais* were also used as post offices for quick delivery of posts and messages. In each *sarai* two cavalry persons were posted, therefore, information could be delivered up to three *krohs* in a day.[15]

So within the routes covered by different travellers as well as Mughal Emperors themselves we do find the significance of the provision of accommodation. For instance Peter Mundy himself mentioned Sop ka sarai when he halted in Hinduan on his way from Bayana.[16] Similarly when they reached Mozamabad there is information regarding the accommodation suite of tent where they took rest on their way. Similarly Nicholas Withington has also mentioned that when they arrived at Agra in 1615 in middle of winter between Ajmer and Agra at every ten *kos* there was built a *sarai* and in it lodging for both men and horses. Hostesses were also provided.[17]

This information regarding the provision of comfort for the travellers is available in *Akbar Nama*. The Emperor Akbar himself issued an order in 1574 for the erection pillar at every *kos* (kosminar) on the way from Agra to Ajmer. These were adorned with deer horns which could be helpful for those lost their way in middle of their journey as well as to give strength to the fatigue of the travellers.[18]

From *Tuzuk-i Jahangiri* we can gather valuable information regarding environment and climate apart from rich wildlife. For instance, Ajmer's air is being mentioned to be equable and as second clime. He further describes the province to be sandy and finding water to be a difficult task. Similarly the cold season is also equable but hot season to be milder than Agra.

Further regarding the environment and climatic conditions on the route from Agra to Ajmer, Peter Mundy provides rich information. He points out that when he along with his journeyman reached Khanuan the climate was to be thundery. There was terrible gust of wind due to which they were unable to see each other. This was further followed by heavy rain which continued almost afternoon.[19] He further gives information that when they were on their way from Lalsot to Moazamabad the area to be hilly. He describes weather to be dry, the scarcity of water and lot of wood.

Peter Mundy further mentioned that before 3 *Courses* (3 *kos*) to Rup Bas that in 3-4 butts water of Ganges was put for king. He mentions that it is a custom of the kings of India to drink no other water but of

that river. This water was brought on camel's back in brass and copper vassals. [20]

Regarding the beliefs of common a man Peter Mundy gives very interesting information. He mentions that in "Pipalgam some six *course* from Chatsu he met 4 or 5 persons carrying faggotts of rodds like switches. I asked what they meant: it was told mee that by the holyness of Khwaja Moinddin Chishti, whosoever had a rodd of those in his hands should not bee bit by any venomous things, as snake, scorpion, etc. and they carried them to Agra where they sold them for 5 or six pice each, bringing them from Ajmer where they grow, and where also is the tomb of their said Saint."[21]

Till now geographical route have been considered important and studied from political and trade or commercial point of view while on the other hand these routes also throw immense light on socio-cultural aspects. Obviously, these traders and political persons were travellers and interacted with local people. What kind of facilities and problems they faced has been discussed in this paper? It is also important to point out that the route under study is from Agra to Ajmer or Ajmer to Agra was followed by Akbar and it was different from Peter Mundy and Joannes De Laet. Akbar and Jahangir had different cultural activities while the European travellers had different experiences. Akbar and Jahangir travelled to Ajmer with the religious and cultural interests while European travellers had commercial interest. For instance Akbar and Jahangir did not take the Bayana route while European travellers did visit Bayana because it was famous for fine quality of indigo. One of the important aspects of this study to view it as source of creating a cross cultural society from above to below and vice-versa. So we should develop the route taken by royal family and pilgrims to visit Khwaja Moinuddin Chishti's *dargah* and Pushkar to promote it from tourism point of view.

References

1. Akbar Nama, tr. vol. II, p. 510.
2. Ibid, Palsaert says that Akbar travelled four kos a day. Obviously he wrote on the basis of hearsay of the people. Jahangir's India: The Remonstrantie of Francisco Pelsaert, tr. W.H. Moreland and P. Geyl, (reprint, 2009), Delhi, p. 70.
3. Akbar Nama, tr. vol. II, p. 511.
4. Akbar Nama, tr. vol. II, pp. 510-11.

5. Jahangir's India: The Remonstrantie of Francisco Pelsaert, tr. W.H. Moreland and P. Geyl, (reprint, 2009), Delhi, p. 70.
6. Indian Travels of Thevenot and Careri, ed. Surendranath Sen, New Delhi, 1949.
7. Tuzuk-i Jahangiri, tr. Alexander Rogers, Delhi, 1968 (second ed.), p. 252.
8. Muslims consider it the night of salvation and some people pray eternal peace for their deceased ancestors.
9. Tuzuk-i Jahangiri, tr. Alexander Rogers, Delhi, 1968 (second ed.), p. 298.
10. Peter Mundy, (North and West India, 1632-33), excerpts, published in Beyond the Three Seas: Traveller's Tales of Mughal India, ed. Michael H. Fisher, 2007, New Delhi, p. 81.
11. Ibid., vol. II, p. 240. Kalavali is not traceable but a small village known as Karauli is situated on Agra-Ajmer route. See, Tiefenthaler I, 172, referred by H. Beveridge in tr. Akbar Nama, vol. II, p. 240, F.N. 1.
12. Tuzuk-i Jahangiri, tr. vol. I, p. 252.
13. Tuzuk-i Jahangiri, tr. Alexander Rogers, Delhi, 1968, (second ed.), pp. 340-41.
14. Shaikh Rizqullah Mushtaqui, Waqiat-i Mushtaqui, tr. Iqtidar Husain Siddiqui, New Delhi, 1993, pp. 136-37.
15. Ibid., p. 80.
16. Nicholas Withington, (1612-16), published in Early Travellers in India, ed. Willam Foster, Delhi, (reprint, 1999), p. 225.
17. Akbar Nama, vol. III, tr. H. Beveridge, p. 156.
18. Ibid.
19. Peter Mundy, (North and West India, 1632-33), excerpts, published in Beyond the Three Seas: Traveller's Tales of Mughal India, ed. Michael H. Fisher, 2007, New Delhi, p. 79
20. Ibid., pp. 81-82.

❑

Dr. Nusrat Yasmeen
Asstt. Professor
Department of Tourism, Hotel,
Hospitality and Heritage Studies
Jamia Millia Islamia
New Delhi-110025

Religio - Cultural Route from Agra to Ajmer
(16th - 17th Century)

Legend

- Kos mark (2 kos)
- Locations
- Akbar_Nama
- Joannes De Laet
- Peter_Mundy
- Prof_Irfan_Habib

ISSN 2278-4632

जनवरी-जून 2019